शाश्वत आराधना

राजकुमार, द्रोणगिरि

समर्पण

लेखक की रचनाएँ

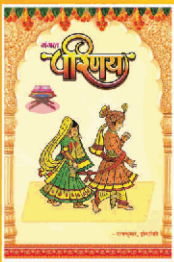
परिणय

सहज प्रवाह

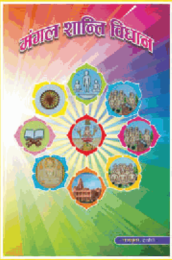
मंगल शान्ति विधान

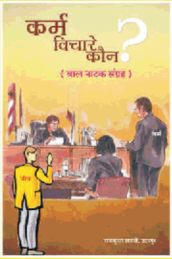
कर्म विचारे कौन?
(बाल नाटक संग्रह)

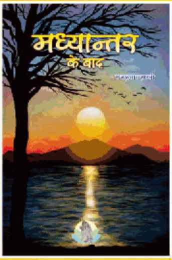
मध्यान्तर के बाद

प्रेरणा

बढ़ते भगवान
घटते भक्त ?

विविधा
(काव्य संग्रह)
- राजकुमार, द्रोणगिरि

बढ़े सो पावे
प्रकाशक समर्पण

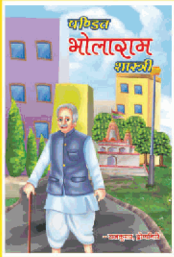
पण्डित भोलाराम शास्त्री

शाश्वत आराधना

दुखते दोहे
- राजकुमार द्रोणगिरि

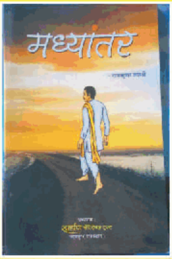
मध्यांतर

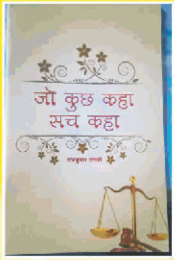
जो कुछ कहा
सच कहा

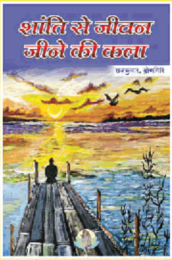
शांति से जीवन
जीने की कला

विलक्षण
दशलक्षण

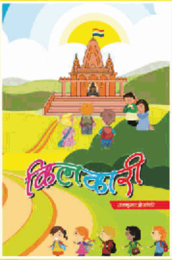
किलकारी

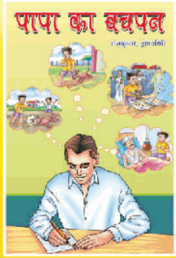
पापा का बचपन

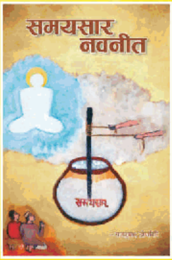
समयसार
नवनीत

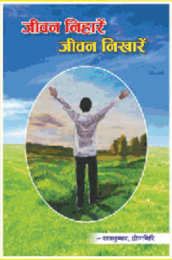
जीवन निहारें
जीवन निखारें

श्रीराम-नन्दिनी ग्रंथमाला का 11 वाँ पुष्प
समर्पण चैरिटेबल ट्रस्ट का 19 वाँ पुष्प

शाश्वत आराधना

(मंगल शान्ति विधान सहित)

रचनाकार
राजकुमार शास्त्री, द्रोणगिरि

संपादक
अजित शास्त्री, अलवर

प्रकाशक
समर्पण
18, आदिनाथ कॉलोनी, केशवनगर, उदयपुर (राज.)
मो. 91 9414103492

प्रस्तुत प्रकाशन में सहयोग करने वाले महानुभाव

1. श्री भानेन्द्र बगड़ा, नैरोबी, केन्या	11000/-
2. श्री के सी जैन, छिन्दवाड़ा	5000/-
3. श्री आनंदकुमार अजमेरा परिवार, रतलाम	5000/-
4. गुप्तदान दिल्ली	2500/-
5. प्रवीण देवीलाल अंबेकर, चिखली	2500/-
6. श्रीमती लक्ष्मी जैन भरड़ा, खान्दू कॉलोनी, बांसवाड़ा	3000/-
7. डॉ. ममता जैन, उदयपुर	1100/-
8. श्रीमती सुधारानी जैन, बालोतरा	1100/-
9. श्रीमती चन्द्रा चौधरी, मुम्बई	1000/-

प्रथम चार संस्करण : 5000 प्रतियाँ [2017 से अद्यतन]
पंचम संस्करण : 2000 [श्रावण शुक्ल पूर्णिमा, वात्सल्य दिवस (रक्षाबंधन पर्व), 22 अगस्त, 2021]

प्राप्ति स्थान : **शाश्वतधाम, उदयपुर (राज.),**
मो. 91-9414103492
: **श्री दिनेश शास्त्री, जयपुर**
मो. 91-9928517346

लागत राशि : 27/-
साहित्य प्रकाशन हेतु सहयोग राशि : 25/-

मुद्रक : देशना (दिनेश) कम्प्यूटर्स, जयपुर
मो. 9928517346

प्रकाशकीय

अभी तक **'समर्पण'** द्वारा प्रकाशित साहित्य पाठकों के बीच भरपूर पसन्द किया गया। एतदर्थ लेखकों/पाठकों/अर्थ सहयोगियों को हार्दिक धन्यवाद।

'समर्पण' के 19वें पुष्प के रूप में राजकुमार शास्त्री द्वारा रचित पूजनों का संकलन **'शाश्वत आराधना'** का पंचम संस्करण प्रस्तुत है। आशा है पाठक इस संकलन में भी साहित्य और अध्यात्म का आनन्द लेंगे।

राजकुमार शास्त्री द्वारा एक ओर गद्य में निबंध, कहानी, उपन्यास, एकांकी लिखे गये, वहीं दूसरी ओर पद्य में मुक्तक, सवैया, गीत, छन्दमुक्त और छन्दबद्ध कवितायें लिखी गयीं, जिन्हें सहृदय पाठकों ने सराहा। अब इस पूजन संकलन के माध्यम से मंगल पाठ से लेकर विसर्जन पाठ तक संपूर्ण रचना आपके द्वारा की गयी है, जो भक्तिभाव से समर्पित है।

'समर्पण' द्वारा प्रकाशित साहित्य के प्रकाशन सहयोग हेतु पाठकों द्वारा अधिकांश अर्थ सहयोग पहले ही प्राप्त हो जाता है, अतः अधिकतर साहित्य **'जो चाहो ले जाओ, जो चाहो दे जाओ'** के आधार पर जाता है। अनेक साधर्मी अधिक संख्या में साहित्य लेते हैं तो सहयोग राशि भी प्रदान करते हैं, वह राशि जिन प्रकाशनों में सहयोग कम आता है, उनके प्रकाशन में व्यय हो जाता है।

छह वर्ष की अल्पावधि में 32 पुष्प प्रकाशित होना एवं उनका समाप्त होना हमारे लिए एक बहुत बड़ी उपलब्धि है।

पुस्तक को प्रकाशन के पूर्व पं. अभयकुमारजी शास्त्री देवलाली, पं. अजितजी शास्त्री अलवर एवं पं. पीयूषजी शास्त्री ने भी अवलोकन कर महत्त्वपूर्ण सुझाव दिये, जिनका यथासंभव उपयोग किया गया है, तदर्थ उन्हें धन्यवाद। इस पुस्तक के प्रकाशन में जिन्होंने अर्थ सहयोग प्रदान किया है, उन्हें धन्यवाद। पुस्तक के आकर्षक मुद्रण हेतु श्री दिनेश जैन-देशना कम्प्यूटर्स जयपुर को भी साधुवाद देते हैं, जो कम समय में हमारी इच्छानुसार प्रकाशन में सहयोग प्रदान करते हैं।

आप पुस्तक पढ़कर जो भी आपके भाव हों, वह 9414103492 पर अवश्य ही सूचित करें। धन्यवाद।

निवेदक : **'समर्पण' चैरिटेबल ट्रस्ट, उदयपुर**

मो. 9511330455, 9414103492

अन्तर्मन

गत दशलक्षण पर्व की पूर्व संध्या पर दशलक्षणों से संबंधित एक छन्द मैंने आदतन वाट्सअप पर प्रेषित किया। तुरन्त ही प्रिय अमित 'अरिहंत' का संदेश आया "भाई साहब ! दशलक्षण पूजन की स्थापना का छन्द तो हो ही गया अब शेष पूजन और लिख दीजिए।"

मैंने उसे तुरन्त लिखा – "भाई पूजन लिखना कोई आसान काम नहीं है। यह काम मैं नहीं कर सकूँगा।" यह लिखने के बाद मस्तिष्क में कौतूहल हुआ कि क्यों न पूजन का प्रयास किया जाये और सुगंध दशमी के दिन पूजन पूर्ण कर हमने बालिकाओं के साथ सामूहिक पूजन का आनंद लिया। भाई अजित द्वारा परिमार्जन करने व उनके कहे अनुसार जयमाला में परिवर्तन कर चतुर्दशी को पुनः परिमार्जित पूजन का आनंद लिया।

पूजन व दशलक्षणों के अर्घ्य के पद एक ही छन्द में थे अत: सहधर्मिणी डॉ. ममता जैन ने दशलक्षण के पदों में छन्द परिवर्तन का सुझाव दिया तदनुसार हर पद में एक दोहा छन्द का प्रयोग कर पूजन पूर्ण की।

गत वर्ष अक्टूबर माह में शाश्वत तीर्थराज सम्मेदशिखर में पण्डित टोडरमल स्मारक भवन की स्वर्ण जयंती वर्ष के समारोह में एक दिन आदरणीय भाई साहब महीपालजी ज्ञायक ने कहा – "भाई साहब आपको हमारा एक काम करना है।"

मैंने सहजता से ही कहा कि "भाई साहब बतायें क्या काम है ?"

भाई साहब ने एकदम अप्रत्याशित/अचिन्तित काम बताया। वह बोले – "भाई साहब आप कहान नगर शिखरजी की पूजन लिख दीजिए।"

मैं तो यह सुनकर अचंभित रह गया क्योंकि मैं दो वर्षों से तुकबंदी अवश्य कर रहा था, परन्तु पूजन लिखने की कल्पना भी नहीं की थी, अत: मैंने मना किया और अन्य योग्य विद्वानों से लिखाने हेतु निवेदन किया, परन्तु वह बोले (अपना काम कराने में वह बहुत कुशल हैं) यह काम आपको ही करना है।

बस फिर क्या था मस्तिष्क घूमने लगा और समारोह सम्पन्न कर जैसे ही रेल में बैठा कि पूजन के अष्टक उमड़-घुमड़ कर आ गये। शाश्वतधाम आकर पूजन पूर्ण की। महीपालजी भाई साहब ने योग्य सुझाव देकर उसे व्यवस्थित कराया और वह शीघ्र ही प्रकाशित होकर शिखरजी पहुँच गई।

जब यह दो पूजनें अन्य की प्रेरणा से लिखी गयीं, तब अन्तर्मन से प्रेरणा प्राप्त हुई कि अब देव-शास्त्र-गुरु पूजन भी लिख लें। दीपावली के अवसर पर हम सपरिवार प्रिंस से मिलने मसूरी जा रहे थे। समय मिलते ही मैं पूजन के बारे में ही सोचता और फलस्वरूप सिद्ध पूजन और महावीर पूजन की भी रचना हो गई, जिसे सपरिवार मसूरी में दीपावली के दिन आनंद के साथ पढ़ी।

शाश्वतधाम में अभी निवास होने से यहाँ विराजित होने वाले भगवन्तों की पूजन लिखने का भाव हुआ और वह रचना भी पूर्ण हुई। तब विकल्प आया कि यदि इनका प्रकाशन किया तो साधर्मियों को विनय पाठ, पूजा पीठिका, शांति पाठ आदि के लिए अन्य पुस्तक की आवश्यकता होगी अतः क्यों न किंचित् संक्षेप में सभी आवश्यक सामग्री स्वयं ही तैयार कर लें और इस राग के कारण मंगल पाठ, प्रक्षाल पाठ से लेकर सभी रचनायें हो गयीं और वात्सल्य दिवस के अवसर पर आपके हाथों में है – **'शाश्वत आराधना'।**

बंधुओ ! यह सच मुझे पता है कि मैं स्तरीय साहित्यकार नहीं हूँ, परन्तु अपने भावों को काव्य में पिरोने का भाव आता है, अजितजी भाई साहब बड़ोदरा, भाई अजितजी अलवर, पीयूषजी जयपुर प्रेरक बनकर परिमार्जन करते हैं और मुझे इनके प्रकाशन का भाव आता है। यदि इन रचनाओं में सिद्धांत/साहित्य विरुद्ध कुछ हो तो हमें अवश्य बताइयेगा और यदि अच्छी लगें तो विचारना कि हमारे देव-शास्त्र-गुरु हैं ही इतने अच्छे कि उनके बारे में लिखकर मेरी रचना भी अच्छी हो गई।

31 जुलाई 2017 – **राजकुमार शास्त्री,** द्रोणगिरि

9414103492

समर्पण चैरिटेबल ट्रस्ट : एक परिचय

देव-धर्म-गुरु के चरणों में, तन-मन-धन सब अर्पण।
आतमहित व तत्त्वज्ञान को, है सर्वस्व समर्पण।।

ट्रस्ट का नाम - समर्पण चैरिटेबल ट्रस्ट | **स्थापना तिथि** - 20 सितम्बर 2014

ट्रस्ट मण्डल - संरक्षक : 1. श्री अजित जैन बड़ौदा, 2. श्री चन्द्रभान जैन घुवारा, 3. श्री ताराचन्द जैन उदयपुर, 4. श्री प्रकाशचन्द छाबड़ा सूरत, 5. श्री ललितकुमार किकावत लूणदा।

अध्यक्ष - राजकुमार शास्त्री उदयपुर, **उपाध्यक्ष** - अजितकुमार शास्त्री अलवर, **कोषाध्यक्ष** - रमेशचन्द वालावत उदयपुर, **मंत्री** - डॉ. ममता जैन उदयपुर, **सहमंत्री** - पीयूष शास्त्री जयपुर, **ट्रस्टी** - पण्डित अशोकुमार लुहाड़िया तीर्थधाम मंगलायतन अलीगढ़, ऋषभकुमार शास्त्री छिन्दवाड़ा, डॉ. महेश जैन भोपाल, रतनचन्द शास्त्री भोपाल, इंजी. सुनील जैन छतरपुर, गणतंत्र 'ओजस्वी' आगरा।

ट्रस्ट की सामान्य रूपरेखा - उद्देश्य : 1. तत्त्वज्ञान, अहिंसा, शाकाहार, सदाचार का प्रचार करना।2. सामाजिक विकृतियों के विरुद्ध जागरुकता पैदा करना। 3. अनुपलब्ध, आवश्यक व नये लेखकों का श्रेष्ठ साहित्य प्रकाशित करना।4. सर्वोपयोगी पत्रिका प्रकाशित करना। 5. शिक्षा व चिकित्सा के क्षेत्र में आवश्यक मार्गदर्शन एवं सहयोग करना।

गतिविधि - 1. साहित्य प्रकाशन, 2. **संस्कार सुधा** मासिक पत्रिका का प्रकाशन, 3. **सुखायतन** - सुखार्थी साधर्मियों के लिए निःशुल्क/सशुल्क आवास-भोजन की व्यवस्था के साथ आध्यात्मिक पर्यावरण प्रदान करना, **4. साधर्मी वात्सल्य योजना** - साधर्मियों से स्वैच्छिक सहयोग लेकर योग्य साधर्मियों को शिक्षा/चिकित्सा सहयोग पहुँचाना। **5. 'प्रयास'** प्रकल्प के माध्यम से जैन समाज के युवा वर्ग को धार्मिक संस्कारों के साथ लौकिक जीवन में उन्नति के विविध क्षेत्रों का परिचय व मार्गदर्शन देना, यथायोग्य-यथासंभव सहयोग करना और इस प्रकल्प को सार्थक करने के लिए यदि आवश्यक हुआ तो केन्द्रों का निर्माण व संचालन करना।

महत्त्वपूर्ण मंत्र

निम्नलिखित मंत्र पढ़कर जल मस्तक पर सिंचित् करें –

ॐ अमृते अमृतोद्भवे अमृतवर्षिणि अमृतं स्रावय-स्रावय सं सं क्लीं क्लीं ब्लूं ब्लूं द्रां द्रां द्रीं द्रीं द्रावय द्रावय सं सं झ्वीं क्ष्वीं हं सः स्वाहा।

निम्नलिखित मंत्र पढ़कर तिलक लगावें –

ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः मम सर्वांगशुद्धिं कुरु कुरु।

निम्नलिखित मंत्र पढ़कर रक्षासूत्र बांधें –

ॐ नमोऽर्हते सर्वं रक्ष ह्रूं फट् स्वाहा।

निम्नलिखित मंत्र पढ़कर मंगल कलश की स्थापना करावें –

ॐ अद्य भगवतो महापुरुषस्य श्रीमदादिब्रह्मणो मतेस्मिन्-----मासे----पक्षे------तिथौ-------वासरे------वर्षे इह----नगरे---- जिनमन्दिरे------मंडलविधानस्य निर्विघ्नसमाप्त्यर्थं मण्डपभूमिशुद्ध्यर्थं पात्रशुद्ध्यर्थं शान्त्यर्थं पुण्याहवाचनार्थं पंचरत्नगंधपुष्पाक्षतादिबीज पूरशोभितं मंगलकलशस्थापनं करोम्यहं क्ष्वीं क्ष्वीं हं सः स्वाहा।

निम्नलिखित मंत्र द्वारा ध्वजदण्ड की शुद्धि करावें –

ॐ ह्रीं श्री नमोऽर्हते पवित्र जलेन ध्वजदण्ड शुद्धिं करोमि।

निम्नलिखित मंत्र द्वारा ध्वजदण्ड में रक्षा सूत्र बंधावें –

ॐ ह्रीं त्रिवर्णसूत्रेण ध्वजदण्डं परिवेष्टयामि।

ध्वजदण्ड एवं ध्वज पर केसर से स्वस्तिक बनाकर ध्वजारोहण कराया जाये। ध्वजारोहण के समय निम्न श्लोक एवं मंत्रोच्चार करें –

तदग्रदेशे ध्वजदण्डमुच्चैर्भास्वद्विमानं गमनाद्विस्थत्।
निवेश्यलग्ने शुभभोपदेश्यं महत्पताकोच्छ्यणं विदध्यात।।

ॐ ह्रीं अर्हं जिनशासनपताके सदोच्छ्रिता तिष्ठ तिष्ठ भव भव वषट् स्वाहा।

आप अपनी सहयोग राशि '**समर्पण चेरीटेबल ट्रस्ट**' के नाम से, पंजाब नेशनल बैंक, पंचशील मार्ग, उदयपुर के खाता क्रमांक 0458000100404840 में जमा करा सकते हैं।

IFSC Code – PUNB 0045800

ध्यातव्य बिन्दु

1. जिनदर्शन-पूजन श्रावक का नित्य कर्त्तव्य है, जिसका हमें निरंतर पालन करना चाहिए।
2. अरहन्तादि पंचपरमेष्ठियों का गुणानुराग तथा गुणानुवाद व्यवहार पूजन तथा गुणानुरूप होना निश्चय पूजन है।
3. पूज्य सदृश पूर्णता व पवित्रता प्राप्त करने में ही पूजन की सार्थकता है।
4. मात्र गाना, बजाना, द्रव्य चढ़ाना पूजन नहीं, जिनवाणी, जिनमंदिर, जिनप्रतिमा की आदर सहित सम्हाल करना, व्यवस्था करना भी पूजन ही है।
5. भक्ति पूजन में हमें बाह्य क्रिया के साथ भावों की शुद्धता पर विशेष ध्यान देना चाहिए।
6. भक्ति-पूजन करते समय अन्य साधर्मियों को दर्शन/पूजन में व्यवधान हो, इसतरह की क्रियायें नहीं करना चाहिए।
7. जिनेन्द्र भगवान की पूजन वीतरागता की प्राप्ति की भावना से करना चाहिए, अन्य लौकिक लाभ की भावना से नहीं।
8. अष्टद्रव्य से पूजन हमें शुद्ध वस्त्र (धोती-दुपट्टे) पहिन कर ही करना चाहिए।
9. पूजन मात्र औपचारिक क्रिया नहीं है, अपितु भगवन्तों के द्रव्य-भाव से नजदीक आकर, स्वयं नजदीक आने का मंगलमय अवसर है।
10. निजात्मा के अंदर जाना ही वास्तविक धर्म है, परन्तु अन्दर मंदिर होकर ही जाया जा सकता है, अतः हमें नियमित जिनमंदिर आकर दर्शन-पूजन-स्वाध्याय करना चाहिए।

विषयानुक्रमणिका

क्र.	विषय	पृष्ठ
1.	तत्त्वविचार	10
2.	मंगल पाठ	11
3.	प्रतिमा प्रक्षाल पाठ	12
4.	विनय पाठ	14
5.	पूजा पीठिका	15
6.	श्री देव-शास्त्र-गुरु पूजन	17
7.	श्री सिद्ध पूजन	21
8.	श्री चौबीस तीर्थंकर पूजन	26
9.	श्री आदिनाथ पूजन	30
10.	श्री महावीर पूजन	36
11.	श्री दशलक्षण पूजन	41
12.	शाश्वतधाम में विराजमान जिनबिंबों की पूजन	49
13.	तीर्थराज सम्मेदशिखर में स्थित श्री कुन्दकुन्द कहान नगर में विराजमान जिनबिम्बों की पूजन	56
14.	मंगल शान्ति विधान	65
14.	अर्घ्यावली	80
13.	महार्घ्य	93
14.	देव भक्ति	95
15.	शास्त्र भक्ति	96
16.	गुरु भक्ति	96
17.	स्वात्मालोचन	97
18.	निज-दोष-दर्शन	101
19.	संत स्वभाव निराला	103
20.	ज्ञान स्वभाव निराला	104

तत्त्वविचार

दुर्लभ नर भव पाकर चेतन किया न तूने तत्त्व विचार।
तू है कौन ? कहाँ से आया ? कैसे चलता यह व्यापार ?
गोरा, काला, शरीर मिला क्यों ? क्यों पाया ऐसा परिवार।
कोई सुन्दर, कोई असुन्दर, दुःख–सुख का ना पारावार।।

सभी चाहते नित प्रति सुख हैं, पर सुख को वे नहीं पाते।
अजर–अमर मैं रहूँ सदा ही, पर इक क्षण में मर जाते।
मोही होकर जिनको पोषे, वे देते हैं साथ नहीं।
करे परिश्रम दिवस–निशि तू, पर लगता कुछ हाथ नहीं।।

यश चाहे पर अपयश मिलता, स्वास्थ चहे पर होवे रोग।
माल भरा है गोदामों में, कर नहीं पावे उनका भोग।
तेरे करने से कुछ हो तो, करले तू इक काला बाल।
बाल भी काला कर ना पाये, अब तो बदलो अपनी चाल।।

होते हुए काम को जानो, कुछ भी नहीं तेरे आधीन।
तेरे वश से कुछ नहीं होता, होता है सब कर्माधीन।
तू है चेतन, तन है अचेतन, है स्वतंत्र सारा परिवार।
हो स्वतंत्र परिणमन सभी का, कर लो चेतन तत्त्व विचार।।

अधिकारी अधीनस्थ को निज सम नहीं बना पाते हैं।
अच्छे वक्ता भी श्रोता को कहाँ वक्ता बना पाते हैं।।
यह तो जिनेन्द्र भगवान की ही महानता है दोस्तो–
जो अपने भक्तों को जिनेन्द्र बनने का मार्ग बता जाते हैं।।

मंगल पाठ

(*'हरिगीतिका' छंद*)

दोष अष्टादश रहित, सर्वज्ञ श्री अरहन्त हैं।
सर्वोदयी संदेश जिनका, वीर्य-सुख भी अनन्त हैं।।1।।
विधि अष्टविरहित ज्ञानतनयुत, तनरहित जो सिद्ध हैं।
गुण नंतमय प्रभु शोभते, पर अष्ट गुण ही प्रसिद्ध हैं।।2।।
दशधर्म द्वादश तप धरें, आचार पंच सु निरत हैं।
षडावश्यक गुप्ति त्रय जो, पालते आचार्य हैं।।3।।
अंग एकादश चतुर्दश, पूर्व का स्वाध्याय है।
पठन पाठन रत रहें, वे उपाध्याय महान हैं।।4।।
विषय-आशा रहित हैं जो, सर्व संग विमुक्त हैं।
निज ज्ञानध्यान करें सदा, लौकिक क्रिया से मुक्त हैं।।5।।
स्याद्वादमय है कथन जिसमें, आत्मतत्त्व प्रकाशिनी।
मुक्ति पथ दिग्दर्शिका जो, भव्य भव-भय नाशनी।।6।।
त्रयलोक में कृत्रिम-अकृत्रिम, शोभते जिनभवन हैं।
हैं मोह के नाशक निलय, सादर उन्हें मम नमन है।।7।।
जिनवर विरह को दूर करती, प्रतिमा जिनवरदेव की।
दृगमोह क्षय हो उस घड़ी, जिस घड़ी जिनवर सेव की।।8।।
वस्तु स्वभाव ही धर्म है, अरु रतनत्रय भी धर्म है।
दशलाक्षणी जो धर्म धारें, नष्ट होते कर्म हैं।।9।।
पंचपरमेष्ठी, जिनालय, जिनवचन, जिनबिम्ब हैं।
जिनधर्म सह सबको नमन, निज आत्म के प्रतिबिंब हैं।।10।।
जिनके गुणों का स्मरण, सब पाप मल को क्षय करें।
नवदेव हैं यह पूज्य सब, जो जगत में मंगल करें।।11।।

प्रतिमा प्रक्षाल पाठ

पुण्योदय है आज हमारा, जिनवर दर्शन पाये हैं।
जिन दर्शन कर निज दर्शन हों, यही भावना भाये हैं।।

अथ पौर्वाह्निकदेववन्दनायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजास्तवनवन्दनासमेतं श्री पंचमहागुरुभक्तिपूर्वककायोत्सर्गं करोम्यहम्। (नौ बार णमोकार मंत्र पढ़ें)

स्वर्ण रत्नमय सिंहासन पर, हे प्रभुवर तुम शोभित हो।
भाव पीठ स्थापित करता, तव गुण पर मैं मोहित हो।।

ॐ ह्रीं श्री पीठस्थापनं करोमि।

तन अरु वसन शुद्ध हैं प्रभुवर, मनशुद्धि की चाहत है।
परिणति सिंहासन पर आओ, हे जिनवर तव स्वागत है।।

ॐ ह्रीं श्री धर्मतीर्थाधिनाथ भगवान्निह सिंहासने तिष्ठ तिष्ठ।

स्वर्ण कमल पर जिनवर शोभित, कलश विराजित हों चहुँ ओर।
जिनवर की प्यारी छवि लखकर, उदित हुआ है समकित भोर।।

ॐ ह्रीं अर्हम् कलशस्थापनं करोमि।

निर्मल जिनवर, निर्मल है जल, निर्मल मन करने आया।
पुण्योदय है आज हमारा, यह अवसर जिनवर पाया।।

ॐ ह्रीं श्री स्नपनपीठस्थिताय जिनाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

हो परिपूर्ण शुद्ध ही जिनवर, प्रक्षालन का फिर क्या काम ?
निर्मलता बस लक्ष्य एक है, तव प्रक्षालन तो बस नाम।।
प्रासुक जल लेकर कलशों में, भाव शुद्धि से करूँ न्हवन।
वीतराग निर्दोष रूप लख, प्रमुदित होता मेरा मन।।

ॐ ह्रीं श्रीमन्तं भगवन्तं कृपालसन्तं वृषभादिमहावीरपर्यन्तं चतुर्विंशति-तीर्थंकरपरमदेवमाद्यानामाद्ये जम्बूद्वीपे भरतक्षेत्रे आर्यखण्डे........... नाम्निनगरे मासानामुत्तमे.......मासे.......पक्षे....दिने मुन्यार्यिकाश्रावक-श्राविकाणां सकलकर्मक्षयार्थं पवित्रतरजलेन जिनमभिषेचयामि।

('दोहा' छंद)

जिनवर के संस्पर्श से, जल भी हुआ पवित्र।
निज सम जो पर को करे, वह ही सच्चा मित्र।।
करूँ प्रक्षालन वस्त्र से, निज परिणति चमकाय।
बस अभेद पर दृष्टि हो, भेद नहीं दिखलाय।।

('वीर' छंद)

शुद्ध भाव अरु शुद्ध वस्त्र से, कीना है प्रतिमा प्रक्षाल।
निजस्वरूप का अनुभव करके, चलूँ मुक्तिपथ की अब चाल।।

ॐ ह्रीं शुद्धवस्त्रेण प्रक्षालनं करोमि।

मन की मिटी मलिनता प्रभुवर, तव गुणनिधि के चिन्तन से।
और अशुचि तन हुआ शुद्ध है, चरण कमल स्पर्शन से।।
नरतन सफल हुआ है मेरा, वीतराग पथ पाकर के।
हो पुरुषार्थ प्रभुवर ऐसा, रुकूँ मुक्ति पुर जाकर के।।
जब तक निज में न रम जाऊँ, दर्शन पूजन अर्चन हो।
सत्संगति स्वाध्याय सदा हो, निज हित हेतु समर्पण हो।।

ॐ ह्रीं श्री पीठस्थिताय जिनाय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

ज्ञान बिना...

ज्ञान बिना नर घूम रहे हैं, ज्ञान ही है इक पार उतारन।
ज्ञान बिना मारीचि भ्रमें जग, ज्ञान ही है इक सुख को कारण।।
सिंह से जब वह सिद्ध बने तब, आतमज्ञान ही है वहाँ कारण।
ज्ञानोदय हो जब जिय के घट, जन्म-जरा-मृत रोग निवारन।।

विनय पाठ

('वीर' छंद)

चतुर्गति में भ्रमते-भ्रमते, मानव तन मैंने पाया।
महाभाग्य मेरा जागा जो, जिनवर दर्शन को आया।।1।।
वीतराग सर्वज्ञ जिनेश्वर, हित उपदेश तुम्हारा है।
तव दर्शन से हे जिन स्वामी, मोह शत्रु भी हारा है।।2।।
जिनपथ को जो जन न पाते, भव-भव में वे रुलते हैं।
पुण्योदय जो जिनपथ पायें, मुक्ति पथ वे चलते हैं।।3।।
चिंतामणिसम तुमको पाया, हो फिर क्यों जग की आशा।
आप दर्श से पौरुष जागा, क्षण में मोह तिमिर नाशा।।4।।
हे जिनवर तव दर्शन से ही, निज अंतर रुचि जागी है।
वीतराग पथ प्रिय लगता है, विषयों की रुचि भागी है।।5।।
तुम सम प्रभुवर मिले पूर्णता, अरु पवित्रता आ जावे।
हे जिनवर तव पूजन से अब, और न कुछ यह मन चाहे।।6।।
वीतरागता न हो जब तक, वीतराग का राग रहे।
वीतरागता ही मंगलमय, राग-द्वेष तो आग लगे।।7।।
मुक्ति पंथ दाता हो प्रभुवर, तुम ही जग उद्धारक हो।
निज वैभव का ज्ञान कराते, भविजन के उपकारक हो।।8।।
पंच परम पद मंगलमय हैं, मंगलमय हैं श्री महावीर।
जिनवच अरु जिनधर्म सुमंगल, नाशो प्रभुवर मेरी पीर।।9।।

सच्चा मित्र...

न्याय नीति पर ले चले, मन को रखे पवित्र।
सुख दुख में जो साथ दे, उसको मानो मित्र।।

पूजा पीठिका

('वीर' छंद)

अरहंत, सिद्ध, सूरि अरु पाठक, सर्व साधु को नमन करूँ।
पंच परम पद ये ही जग में, तिनि गुण चिन्तन-मनन करूँ।।

ॐ ह्रीं श्री पंचपरमेष्ठिभ्यो नमः (पुष्पांजलिं क्षिपामि)

अरहंत, सिद्ध व साधु जग में, अरु सर्वज्ञ कथित है धर्म।
मंगल, उत्तम, शरण जगत में, ये ही जिय को दाता शर्म।।

मोह-राग-रुष पाप गलें, अरु सच्चा सुख इनसे मिलता।
लोकोत्तम अरु शरणभूत हैं, इन्हें नमें भवि उर खिलता।।

ॐ नमोऽर्हते स्वाहा (पुष्पांजलिं क्षिपामि)

पंच परम गुरु का गुण चिंतन, राग-द्वेष हरने वाला।
अर्चक-पूजक-चिंतक के उर, ज्ञानप्रभा भरने वाला।।

जिनवच में जो भवि रमते हैं, मोह वमन हो जाता है।
स्व-पर का हो भेदज्ञान, अरु निजानंद रस पाता है।।

जिनवर का पथ हमें मिला है, खुद जिनवर बन जाने को।
भक्तिभाव से करो अर्चना, लौट न भव में आने को।।

सुर-नर-पशु कृत विघ्न भागते, इसमें कुछ आश्चर्य नहीं।
पंच परम पद पूजन से जन, हो जाते हैं पूज्य यहीं।।

पुष्पांजलिं क्षिपामि

('चौपाई' छंद)

जल-चंदन-अक्षत-पहु लाया, चरु अरु दीप-धूप-फल भाया।
मंगल गान गीत शुभ गाया, प्रभु को हर्षित अर्घ्य चढ़ाया।।

ॐ ह्रीं श्री अरहंत-सिद्ध-आचार्य-उपाध्याय-साधु-पंचपरमेष्ठिभ्यो, भगवज्जिनसहस्राष्ट नामभ्यः, जिनपंचकल्याणकेभ्यश्च अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

('पद्धरि' छंद)

अष्टादश दोष रहित जिनेश, त्रिभुवन के ज्ञायक हो महेश।
तुम मुक्तिमार्ग के नायक हो, भवि जीवन को सुखदायक हो।।
तुम हो अनन्त गुणवन्त देव, शत इन्द्र करें प्रभु तुम्हरी सेव।
तव आराधन से हे जिनवर, भविजन सब होते मुक्तिवर।।
मैं द्रव्य शुद्धि कर यथायोग्य, अब भाव शुद्धि चाहूँ मनोज्ञ।
इन्द्रादिक पद की चाह नहीं, विषयों की भी अभिलाष नहीं।।
तव पूजन से कुछ न चाहूँ, बस तुम सम ही बनना चाहूँ।
प्रभुदर्शन से मन सुमन खिला, मानो मरुस्थल में नीर मिला।।

पुष्पांजलिं क्षिपामि

('हरिगीतिका' छंद)

अरहन्त सिद्धाचार्य पाठक, साधु वंदन योग्य हैं।
ऋषभादि तीर्थंकर हमारे, पथ प्रदर्शक पूज्य हैं।।

सीमंधरादि जिनवरा, शोभित महा विदेह में।
हैं जिनवचन मंगलमयी, आतम दिखाते हैं हमें।।

ऋद्धिधारक मुनिवरों के, चरण में मम नमन हो।
चलूँ उनके ही सुपथ पर, मोह का अब वमन हो।।

हैं तीर्थक्षेत्र सुखद सभी, हमको भवोदधि तारने।
जिन चैत्य-चैत्यालय जजूँ, मैं मात्र मुक्ति कारणे।।

वीतरागी धर्म है बस, राग हरने के लिए।
जिन अर्चना है पूज्य-पूजक, भेद भरने के लिए।।

पुष्पांजलिं क्षिपामि

श्री देव-शास्त्र-गुरु पूजन

स्थापना

('दोहा' छंद)

चार घातिया नाश कर, पाया केवलज्ञान।
किया प्रवर्तन तीर्थ का, जय अरिहंत महान।।
भव-भय नाशक जिनवचन, स्याद्वादमय होय।
जिनवचनामृत पान से, मिथ्या मद को खोय।।
विषय-कषायातीत हैं, बाह्य दिगम्बर वेष।
करें निजामृत पान नित, नमें दूर हों क्लेश।।

ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरुसमूह ! अत्र अवतर अवतर संवौषट्, अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः, अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् पुष्पांजलि क्षिपामि।

('वीर' छंद)

जन्म-जरा से पीड़ित हो मैं, भव-भव में भटकाया हूँ।
निजस्वभाव की विस्मृति से ही, मैं अनंत दुःख पाया हूँ।।
देव-शास्त्र-गुरु का स्वरूप लख, निज स्वरूप का ज्ञान करूँ।
जन्म-जरा-मृत को क्षय करने, अजर-अमर निज को निरखूँ।।

ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरुभ्यो जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं नि. स्वाहा।

जब तक निज घर में न आऊँ, भवाताप तब तक ही है।
जिनवचनामृत शीतल चंदन, भवाताप नाशक ही है।।
जन वचनों को आदर देकर, जिन वच को मैं भूल गया।
स्याद्वाद की शरण मिले अब, तव चरणों को पूज रहा।।

ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरुभ्यो संसारतापविनाशनाय चंदनं नि. स्वाहा।

द्रव्य-भाव-नोकर्म रहित मैं, ज्ञानानंदस्वभावी हूँ।
पर्यायों में अपनेपन से, राग-द्वेष विभावी हूँ।।

क्षत भावों से दृष्टि हटाकर, अक्षय पद पाना चाहूँ।
तुम ही हो दिग्दर्शक मेरे, चरणों में मस्तक नाऊँ।।
ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरुभ्यो अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं नि. स्वाहा।

विषयों में सुखबुद्धि से ही, ब्रह्मभाव को भूल गया।
पुण्योदय में विषय प्राप्त कर, उनमें ही मैं फूल गया।।
विषयों का रस विषमय ही है, अब मैं इनका त्याग करूँ।
देव-शास्त्र-गुरु के पथ चलकर, निजानंद का पान करूँ।।
ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरुभ्यो कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं नि. स्वाहा।

अग्नि जलाकर शीतलता की, चाह महादुःखदायी है।
धर्मामृत के पान किये बिन, शांति किसने पाई है?
भोग-भोग कर जड़ विषयों को, तृप्ति मैंने चाही थी।
चाह दाह में जल-जल कर बस, आकुलता ही पाई थी।।
ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरुभ्यो क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं नि. स्वाहा।

मोक्षमार्ग दर्शाने वाले, देव-शास्त्र-गुरु सम्यग्दीप।
स्वपरप्रकाशक शक्ति आत्म की, जैसे जगमग होय प्रदीप।।
सर्वज्ञत्व शक्ति की श्रद्धा, ही प्रगटाती केवलज्ञान।
सम्यग्ज्ञान ज्योति न पाई, अतः रहा निज से अनजान।।
ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरुभ्यो मोहांधकारविनाशनाय दीपं नि. स्वाहा।

निज को भूला भव-भव भटका, शांति पाई कभी नहीं।
कर्मोदय को दोष लगाया, निज परिणति पर दृष्टि नहीं।।
गुण अनंतमय वैभव लखकर, अब निज घर में आऊँगा।
कर्म स्वयं भागेंगे ही फिर, मैं निष्कर्म कहाऊँगा।।
ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरुभ्यो अष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं नि. स्वाहा।

मुक्त स्वरूप सदा ही मैं हूँ, पर माना हूँ बंधमयी।
बंधन की अनुभूति से ही, जीवन पाया दुःखमयी।।

ज्ञानानन्द स्वरूप निरख कर, मुक्त दशा भी मैं पाऊँ।
प्रभुवर पर की आस रहे न, और नहीं मैं कुछ चाहूँ।।

ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरुभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं नि. स्वाहा।

चिदानंद चिन्मय के सन्मुख, जड़ वैभव का मोल नहीं।
इन्द्र विभूति-चक्री वैभव, का भी कोई तोल नहीं।।
लौकिक पद की चाह न किंचित्, पद चाहूँ मैं एक अनर्घ्य।
देव-शास्त्र-गुरु के चरणों में, करूँ समर्पित मैं यह अर्घ्य।।

ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरुभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि. स्वाहा।

जयमाला

('सोरठा' छंद)

त्रिभुवन मांहिं तीन, देव-शास्त्र-गुरु रतन हैं।
मनमाने मतिहीन, रतन कहें इस लोक में।।
शिवमग दर्शक दीप, देव-शास्त्र-गुरु ही कहे।
पुद्गल रचित प्रदीप, होते अज्ञानी कहें।।

('चौपाई' छंद)

गृहस्थ दशा को जिनने त्यागा, निज आतम में ही मन लागा।।
नग्न दिगम्बर पद है धारा, घाति कर्म का कर संहारा।।
अनंत चतुष्टय प्रगटित कीना, हित उपदेश सभी को दीना।।
द्रव्य स्वयं से सब हैं राजा, क्रमनियमित होते सब काजा।।
निज आतम है अति बलशाली, कार्य नित्य हो रहे न खाली।।
निज प्रभुता को भवि पहचानो, सिद्धों से कम कभी न मानो।।
कोई किसी का कार्य करे ना, सुख-दुःख तेरा कोई हरे ना।।
निज आश्रय से समकित होता, ज्ञान-चरण भी सम्यक् होता।।

प्रभु की वाणी में यह आया, सभी सिद्ध सम हैं यह गाया।।
वीतराग पोषक जिनवाणी, सर्व जीव की है कल्याणी।।
आचारज-उवझाय-मुनीशा, गुण छत्तिस-पच्चिस-अठबीसा।।
सर्व मुनि हैं शुद्ध उपयोगी, नित्य निजानंद के हैं भोगी।।
नहीं किसी से प्रीति न रोषा, नहीं किसी के लखते दोषा।।
निरतिचार हैं जीवन जीते, जिनवचनामृत नित ही पीते।।
यश-पद भोगों की नहीं आशा, इन्द्रादिक भी जिनके दासा।।
देव-शास्त्र-गुरु पूज्य हमारे, सत्य स्वरूप बतावन हारे।।
पूजा का फल मैं यह चाहूँ, तुम सम पूज्य स्वयं बन जाऊँ।।
चतुर्गति का भ्रमण नशाऊँ, लौट न फिर अब जग में आऊँ।।

ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरुभ्यो जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

('वीर' छंद)

देव-शास्त्र-गुरु की पूजन से, स्व-पर विवेक हृदय जागा।
निज प्रभुता के दर्श मात्र से, मोह शत्रु सत्वर भागा।।
देव-शास्त्र-गुरु तो वाचक हैं, वाच्य एक निज शुद्धातम।
निज स्वभाव के आश्रय से ही, आतम बनता परमातम।।

पुष्पांजलिं क्षिपामि

सत्संगति...

सत् स्वभाव के संग में रहना, निश्चय से सत्संग कहा।
जो जन सत् का आश्रय लेते, उनका संग व्यवहार अहा।।
सत् स्वभाव की चर्चा करने, वालों के संग में रहना।
है सत्संग उपचरित भाई! यथायोग्य संगति करना।।

श्री सिद्ध पूजन

स्थापना

('वीर' छंद)

ध्रुव स्वभाव के अवलंबन से, ध्रुव गति जिनने पाई है।
चतुर्गति का चल स्वभाव तज, जहाँ अचलता आई है।।
त्रिभुवन में उपमान न कोई, अतः अनुपम कहें जिनेश।
स्वयं सिद्ध निर्दोष महाप्रभु, मम उर में तुम रहो हमेश।।

ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपते सिद्धपरमेष्ठिन् ! अत्र अवतर अवतर संवौषट्, अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः, अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् पुष्पांजलि क्षिपामि।

('वीर' छंद)

निज सर्वज्ञ स्वभाव न जाने, कर्म निमित्त कहाता है।
हो अल्पज्ञ स्वयं दुख भोगे, नाम कर्म का आता है।।
निज ज्ञायक में रमने से ही, ज्ञानावरण विनाश हुआ।
क्षायिक ज्ञान प्रकट होने से, लोकालोक प्रकाश हुआ।।
अजर-अमर पद पाने को मैं, सिद्धों को सादर ध्याऊँ।
शीतल जल प्रभु करूँ समर्पित, लौट न फिर भव में आऊँ।।

ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने जन्म-जरा-मृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

कर्म दर्शनावरण उदित जब, वस्तु की पहचान न हो।
है पुरुषार्थहीनता निज की, स्व-पर का जब भान न हो।।
पौरुष जागा निज में आये, कर्म स्वयं ही भाग गया।
वस्तु चराचर लगी झलकने, क्षायिक दर्शन प्रकट हुआ।।
भवाताप से विरहित होने, सिद्धों को सादर ध्याऊँ।
शुद्ध भाव चंदन कर अर्पित, लौट न फिर भव में आऊँ।।

ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने संसारतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

ज्यों मदिरा पी मनुज कोई, निज घर का ही मग भूल गया।
मोह महापद पीकर के त्यों, चेतन निज को भूल गया।।
निज स्वरूप में स्थिरता लख, मोहनीय भग जाता है।
मिथ्यातम विघटित होते ही, समकित रवि उग आता है।।
अक्षत पद के पाने हेतु, सिद्धों को सादर ध्याऊँ।
उज्ज्वल धवलाक्षत कर अर्पित, लौट न फिर भव में आऊँ।।

ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

निज शक्ति जब प्रकट न होती, जाने-भोगे जिय कैसे?
शक्तिहीन हो भव-भव रुलता, झंझा में तृण हो जैसे।।
निज में निज की रचना से ही, जागा उत्तम जब पुरुषार्थ।
क्षायिक वीर्य मिला प्रभुवर को, सिद्ध हुए सारे ही अर्थ।।
मदन पराजित करने हेतु, सिद्धों को सादर ध्याऊँ।
गुण अनंत सुमनार्पित करके, लौट न फिर भव में आऊँ।।

ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

संयोगों से सुख-दु:ख माना, निजानंद को भूल गया।
मिले इष्ट संयोग कभी तो, सुखी मानकर फूल रहा।।
पूर्ण निराकुल सुख स्वभाव में, जब प्रभुवर आसीन हुए।
प्रकट हुआ गुण अव्याबाध सु, प्रभु पूर्ण स्वाधीन हुए।।
क्षुधा रोग के नाश करन को, सिद्धों को सादर ध्याऊँ।
सरस सुवासित चरु अर्पित कर, लौट न फिर भव में आऊँ।।

ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पशु-नारक-नर-सुर गतियों में, चेतन कब से भटक रहा।
नाना रूपों को धारण कर, भव अटवी में भटक रहा।।

अरे असंख्य प्रदेश क्षेत्रमय, न्यूनाधिक जो न होता।
आयु कर्म के नश जाने से, अवगाहनत्व प्रकट होता।।
स्व-पर प्रकाशक दीप जलाने, सिद्धों को सादर ध्याऊँ।
सम्यग्ज्ञान प्रदीप समर्पित, लौट न फिर भव में आऊँ।।

ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने मोहांधकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

त्रस-थावर, गति आदिक रचना, नाम कर्म ही करता है।
विविध देह को धारण कर भी, चेतन ज्ञायक रहता है।।
स्व चतुष्टय में चेतन आया, नामकर्म तब भाग गया।
सूक्ष्मत्व गुण प्रगटा प्रभु को, निज वैभव में जाग गया।।
द्रव्य-भाव-नोकर्म नशाने, सिद्धों को सादर ध्याऊँ।
करूँ समर्पित धूप सुगंधित, लौट न फिर भव में आऊँ।।

ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

गोत्र कर्म के कारण जिय को, उच्च-नीच कुल है मिलता।
मिलता कभी अनादर या फिर, यश-पद सुमन कभी खिलता।।
हैं अनंत गुणधारक सब ही, कोई छोटा-बड़ा नहीं।
अगुरुलघु गुण प्रगटा प्रभु को, भेद कोई अब रहा नहीं।।
सुखमय मुक्ति फल पाने को, सिद्धों को सादर ध्याऊँ।
शुद्धातम रसमय फल अर्पित, लौट न फिर भव में आऊँ।।

ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

क्षायिक दर्शन-ज्ञान-अगुरुलघु, सूक्ष्मत्व अरु अव्याबाध।
समकित-वीरज अवगाहन से, और रही न कोई साध।।
प्रकट अष्ट गुण हुए प्रभु को, यह कहना है बस व्यवहार।
गुण अनंतमय प्रभु शोभते, जहाँ न कोई है उपचार।।

है अनंत गुणमयी विभूति, अमित काल तक भोगेंगे।
बनें प्रभु के हम अनुगामी, अब क्यों भव में रोवेंगे।।
कर सिद्धत्व साध्य ही अपना, सिद्धों को सादर ध्याऊँ।
गुण अनंतमय अर्घ्य समर्पित, लौट न फिर भव में आऊँ।।

ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

('मानव' छंद)

दृग-मोह वारुणी पीकर, मैं निज स्वरूप न जाना।
निज शुद्धातम को भूला, बस रागी-द्वेषी माना।।
पर में अपनापन करके, भव अटवी में ही भटका।
विषयों में सुख बुद्धि से, मैं चतुर्गति में भटका।।
मैं धन-पद-यश को पाकर, परिजन-पुरजन भरमाकर।
मैं स्व-पर विवेक भुलाकर, घबराया हूँ दुःख पाकर।।
अब मेरा भाग्य जगा है, जो जिनवर दर्श मिला है।
सिद्धों का कर अभिनंदन, मुरझाया सुमन खिला है।।
तुमने निज को पहिचाना, तब समकित सूर्य उगा है।
आतम को जागृत लखकर, मोहारि स्वयं ही भगा है।।
घातिया कर्म क्षय करके, अरहन्त दशा है पायी।
फिर अघातिया अरि क्षय कर, सिद्धत्व दशा प्रगटायी।।
अब निज-पर के आतम में, स्थापन कर सिद्धों की।
अब चाह जगी उर मेरे, सिद्धत्व प्रगट करने की।।
तुमको लख प्रभु यह माना, सिद्धत्व स्वयं से आता।
वह पामर प्रभु होता है, जिसको निज आतम भाता।।

तुम धर्म द्रव्य सम हो प्रभु, निज आतम में आने को।
तुम हो अधर्म सम स्वामी, निज में ही जम जाने को।।
भविजन तुमसे प्रेरित हो, स्वयमेव गमन करते हैं।
निज आतम में ही आकर, स्वयमेव रमण करते हैं।।
जो सिद्ध हुए हैं अब तक, उनने यह विधि अपनायी।
अब मैं भी तव पद चाहूँ, मुझको भी यह विधि भायी।।
ज्यों पिता गोद में आकर, शिशु चन्द्र ग्रहण को उछले।
त्यों तव समीप में आकर, सिद्धत्व हेतु मन मचले।।
प्रभु मैं अव्यक्त स्वरूपी, तुमने ही व्यक्त किया है।
तव व्यक्त दशा को लखकर, अव्यक्त को समझ लिया है।।
परिपूर्ण स्वरूप है मेरा, मुझमें न कुछ होना है।
पर्यायें आयें-जायें, मुझमें न कुछ आना है।।
मैं अजर-अमर अविनाशी, परिणमन न होता मुझमें।
वह धन्य परिणति होती, एकत्व करे जो मुझमें।।
आदर्श सदा हो मेरे, मम छवि है तुममें दिखती।
तव दर्शन से ही स्वामी, परिणति निज द्रव्य निरखती।।
तुम साध्य हो प्रभुवर मेरे, मैं ध्येय बनाऊँ अपना।
परिपूर्ण दशा प्रकटेगी, सिद्धत्व नहीं अब सपना।।

ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपतये जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

('वीर' छंद)

अरस-अरूपी-अविनाशी अरु अजर-अमर अशरीरी हो।
अमल-अरागी-अस्पर्शी अरु निर्मल ज्ञान शरीरी हो।।
शाश्वत शुद्ध स्वरूप निरखकर, अविचल पद को पाया है।
करूँ समर्पण निज को निज में, तव पद ही मन भाया है।।

पुष्पांजलिं क्षिपामि

श्री चौबीस तीर्थंकर पूजन

स्थापना

('वीर' छंद)

हे ऋषभ-अजित हे संभव जिन, अभिनंदन वंदन करते हैं।
जय सुमति-पद्म-सुपार्श्व प्रभु, चन्द्रप्रभ क्रन्दन हरते हैं।।
जय पुष्पदंत-शीतल-श्रेयांश, प्रभु वासुपूज्य अरु विमलानंत।
जय धर्म-शांति-कुंथु-अर-मल्लि, करदो प्रभु तुम भव का अंत।।
मुनिसुव्रत-नमि-नेमि-पार्श्व प्रभु, महावीर के गुण गाओ।
वर्तमान चौबीस जिनेश्वर, सादर मम उर में आओ।।

ॐ ह्रीं श्री वृषभादिमहावीरपर्यंतचतुर्विंशतिजिनसमूह ! अत्र अवतर अवतर संवौषट्, अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः, अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् पुष्पांजलि क्षिपामि।

('मानव' छंद)

हो जन्म-जरा से पीड़ित, मैं नित आकुलता पाता।
चारों गतियों में भटका, पाई न इक क्षण साता।।
चौबीस परिग्रह त्यागूँ, जन्मादिक रोग नशाऊँ।
चौबीस तीर्थंकर ध्याऊँ, तब निर् आकुल सुख पाऊँ।।

ॐ ह्रीं श्री वृषभादिमहावीरान्तेभ्यो जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

विषयों की दावानल में, है चेतन मेरा झुलसा।
निज सुखस्वरूप को भूला, बस मोहादिक में उलझा।।
चौबीस परिग्रह त्यागूँ, मैं भव आताप नशाऊँ।
चौबीस तीर्थंकर ध्याऊँ, तब निर् आकुल सुख पाऊँ।।

ॐ ह्रीं श्री वृषभादिमहावीरान्तेभ्यो संसारतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

क्षत-विक्षत भावों में रत, निज अक्षत पद न जाना।
हे जिनवर तव पूजन से, चाहूँ अक्षय पद पाना।।
चौबीस परिग्रह त्यागूँ, मैं अब अक्षय पद पाऊँ।
चौबीस तीर्थंकर ध्याऊँ, तब निर् आकुल सुख पाऊँ।।

ॐ ह्रीं श्री वृषभादिमहावीरान्तेभ्यो अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

यह विषयों की अभिलाषा, भव-भव में मुझे रुलाती।
तव वीतराग छवि प्यारी, निष्काम स्वरूप दिखाती।।
चौबीस परिग्रह त्यागूँ, मैं कामरोग विनशाऊँ।
चौबीस तीर्थंकर ध्याऊँ, तब निर् आकुल सुख पाऊँ।।

ॐ ह्रीं श्री वृषभादिमहावीरान्तेभ्यो कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

नित छप्पन भोगों से भी, यह क्षुधा तृप्त नहीं होती।
चैतन्य रसामृत से ही, चेतन को तृप्ति होती।
चौबीस परिग्रह त्यागूँ, मैं क्षुधा रोग विनशाऊँ।
चौबीस तीर्थंकर ध्याऊँ, तब निर् आकुल सुख पाऊँ।।

ॐ ह्रीं श्री वृषभादिमहावीरान्तेभ्यो क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

छाया था मोह महातम, चैतन्यरूप न जाना।
तुम ज्ञान सूर्य हो स्वामी, अब निज स्वरूप पहिचाना।।
चौबीस परिग्रह त्यागूँ, मोहान्धकार विनशाऊँ।
चौबीस तीर्थंकर ध्याऊँ, तब निर् आकुल सुख पाऊँ।।

ॐ ह्रीं श्री वृषभादिमहावीरान्तेभ्यो मोहांधकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

क्रोधादि कषाय जलाकर, दश धर्म गंध फैलाऊँ।
निज गुण अनंत सुरभि से, चैतन्य लोक महकाऊँ।।

चौबीस परिग्रह त्यागूँ, मैं अब वसुकर्म नशाऊँ।
चौबीस तीर्थंकर ध्याऊँ, तब निर् आकुल सुख पाऊँ।।

ॐ ह्रीं श्री वृषभादिमहावीरान्तेभ्यो अष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं नि. स्वाहा।

त्रैलोक्य शिखर पर शोभित, मुक्तिफल लगा हुआ है।
जो निजस्वरूप में उतरा, फल उसने प्राप्त किया है।।
चौबीस परिग्रह त्यागूँ, मैं मुक्तिफल को पाऊँ।
चौबीस तीर्थंकर ध्याऊँ, तब निर् आकुल सुख पाऊँ।।

ॐ ह्रीं श्री वृषभादिमहावीरान्तेभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं नि. स्वाहा।

चैतन्य स्वपद के सन्मुख, इन्द्रादिक पद न चाहूँ।
अन् अर्घ्य सुपद मिल जाये, बस निज में ही रम जाऊँ।।
चौबीस परिग्रह त्यागूँ, पदवी अनर्घ्य मैं पाऊँ।
चौबीस तीर्थंकर ध्याऊँ, तब निर् आकुल सुख पाऊँ।।

ॐ ह्रीं श्री वृषभादिमहावीरान्तेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि. स्वाहा।

जयमाला

('दोहा' छंद)

राग-द्वेष विरहित प्रभो, पायो केवलज्ञान।
हित उपदेश दिया प्रभो, चौबीसों भगवान।।
चौबीसों जिनवर सभी, हैं समान गुण युक्त।
घाति-अघाति नाश कर, सभी हुए हैं मुक्त।।
चौबिस परिग्रह त्याग कर, मुक्ति गये जिनराज।
निज का ही कर परिग्रहण, पाऊँ सिद्ध समाज।।

('वीर' छंद)

है त्रिलोक की शाश्वत रचना, सभी जिनेश्वर कहते हैं।
जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में, हम सब भविजन रहते हैं।।

भव्य-भावना जिनकी होती, वे तीर्थंकर होते हैं।
निज आतम के अवलंबन से, मोह-राग-रूष खोते हैं।।
लोकालोक ज्ञान में झलके, वस्तुस्वरूप बताते हैं।
तीर्थ प्रवर्तन करने से ही, तीर्थंकर कहलाते हैं।।
द्रव्य-भाव-नोकर्म रहित ये, शुद्धातम दिखलाते हैं।
तिल में तेल, दुग्ध में घृतवत्, तन-चेतन बतलाते हैं।।
परद्रव्यों से भिन्न आत्म की, रुचि से समकित होता है।
भाव शुभाशुभ में जो फंसता, चतुर्गति में रोता है।।
सम्यग्दर्शन-ज्ञान सहित जो, चारित्र मुनिवर धरते हैं।
निज में ज्यों-ज्यों उतरें मुनिवर, गुणस्थान त्यों चढ़ते हैं।।
निज आतम में थिरता से ही, घाति कर्म नश जाते हैं।
होती है जब सहज योग्यता, सिद्ध प्रभु बन जाते हैं।।
चौबीसों तीर्थंकर प्रभु ने, मुक्तिमार्ग यह बतलाया।
नय व्यवहार और निश्चय से, भेदाभेद है समझाया।।
आदिनाथ प्रभु अष्टापद से, वासुपूज्य चंपापुर से।
नेमिनाथ गिरनार पधारे, महावीर पावापुर से।।
तीर्थराज सम्मेदशिखर से, बीस तीर्थंकर मोक्ष गये।
हम भी उनके पथ पर चलकर, सुखी रहें यह भाव भये।।

ॐ ह्रीं श्री वृषभादिमहावीरान्तेभ्यो जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

वृषभादिक चौबीस जिनेश्वर, त्रिभुवन शांति प्रदाता हैं।
मुक्तिमार्ग के दिग्दर्शक ये, अजरामर पद दाता हैं।।
मैं भी मुक्तिमार्ग पथिक बन, दुःखमय भवसागर तर लूँ।
पर परिणति से दूर अतीन्द्रिय, निजानंद गागर भर लूँ।।

पुष्पांजलिं क्षिपामि

श्री आदिनाथ पूजन

स्थापना

('दोहा' छंद)

जन्म अयोध्या में हुआ, ऋषभदेव भगवान।
नाभिराय मरुदेवी सुत, आप हुए गुण खान।।

('रोला' छंद)

आप हुए गुण खान, शांति चहुँ गति में छाई।
बाल ऋषभ की छवि को लख, वसुधा हरषाई।।
राज-पाट सब छोड़ा प्रभु ने, बस इक क्षण में।
निज से प्रीति लगी अब, प्रीति रही न कण में।।
मोह नाश कर प्रभु ने, केवलज्ञान लिया है।
ले मुक्ति को स्वयं, मुक्ति संदेश दिया है।।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्र! अत्र अवतर अवतर संवौषट्, अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः, अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् पुष्पांजलि क्षिपेत्।

('हरिगीतिका+दोहा' छंद)

है आत्मभाव सदा सुखद, परिपूर्ण पर से भिन्न है।
जो आदि-अंत रहित सदा, निज भाव से ही अभिन्न है।।
संकल्प और विकल्प से भी जो सदा ही पार है।
निज रूप दिखलाया ऋषभ ने, वंदना शत बार है।।
शीतल सुरभित नीर से, पूजन करता आज।
जन्म-जरा-मृतु नाश कर, पाऊँ चेतनराज।।1।।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय जन्म-जरा-मृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

निज और पर की एकता के, मोह को भविजन तजो।
ज्ञानियों को सदा प्रिय जो, ज्ञान रस को ही चखो।।
ज्ञानादि गुणमय आत्मा, भव ताप से भी पार है।
निज रूप दिखलाया ऋषभ ने, वंदना शत बार है।।
भवाताप के नाश हित, वंदन है ऋषभेश।
चंदन से अर्चन करूँ, प्रभुवर प्रथम जिनेश।।2।।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय संसारतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

कनक-कान्ता की ललक में, स्वयं को भूला अहो।
चैतन्य को लखने कुतूहल, अरे चेतन तनिक हो।।
यदि भेदज्ञान नहीं हुआ तो, मनुज तन की हार है।
निज रूप दिखलाया ऋषभ ने, वंदना शत बार है।।
अक्षत पद है आपका, अक्षत है मम रूप।
अक्षत से पूजन करूँ, हे अक्षय सुख भूप।।3।।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

नाना विकल्पों से अरे, चैतन्य कैसे प्राप्त हो।
चेतना को मिले चेतन, चैतन्य में यदि व्याप्त हो।।
निज द्रव्य-गुण सर में रहे, तो मिले शांति अपार है।
निजरूप दिखलाया ऋषभ ने, वंदना शत बार है।।
विषयों की अति प्रीति से, निजानंद ना भाय।
पुष्पों से अब पूजकर, गुण अनंत महकाय।।4।।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं नि. स्वाहा।

वर्णादि अरु रागादि भावों से, पृथक् चेतन अहा।
बस ज्ञानमय ही आत्मा है, यही जिनवर ने कहा।।

परद्रव्य अरु परभाव से, चेतन सदा ही पार है।
निज रूप दिखलाया ऋषभ ने, वंदना शत बार है।।
निज आतम नैवेद्य से, क्षुधा तृप्त हो जाय।
चरु से पूजन मैं करूँ, क्षुधा रोग नश जाय।।5।।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मैं एक चेतन सदा कर्ता, क्रोधादि मेरे करम हैं।
वस्तु स्वभाव नहीं अरे यह, मात्र जिय का भरम है।।
ज्ञान से न बंध हो, अज्ञान से संसार है।
निज रूप दिखलाया ऋषभ ने, वंदना शत बार है।।
अद्‌भुत ज्ञान प्रदीप है, निज-पर करे प्रकाश।
दीपक से अर्चन करूँ, होवे मोह विनाश।।6।।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय मोहांधकारविनाशनाय दीपं नि. स्वाहा।

द्रव्य व्यापक है सदा, पर्याय व्याप्य कही प्रभो।
व्याप्य-व्यापक है जहाँ, कर्ता-करम भी है अहो।।
कर्ता-करम की भ्रान्ति इक बस, जीव को दुखकार है।
निज रूप दिखलाया ऋषभ ने, वंदना शत बार है।।
दशलक्षण मय धूप से, पूजूँ ऋषभ जिनेश।
अष्ट कर्म विध्वंस कर, पद पाऊँ परमेश।।7।।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय अष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

प्राप्त पर्यय में सदा ही, अज्ञजन नित रत रहें।
अपद पद में मत्त जन को, स्वपद से च्युत जिन कहें।।
चैतन्य पद तो शुद्ध है, अरु मुक्ति का आधार है।
निज रूप दिखलाया ऋषभ ने, वंदना शत बार है।।

शुद्धातम अति सरस फल, अनुपम महिमावान।
मुक्ति फल की प्राप्ति हित, पूज रहा भगवान।।8।।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

चैतन्य चिन्तामणि स्वयं मैं, शक्तियाँ भरपूर हैं।
सर्वार्थसिद्धि हो स्वयं से, कष्ट होते दूर हैं।।
अन्य परिग्रह क्या करे जब, जीव ही सुखकार है।
निज रूप दिखलाया ऋषभ ने, वंदना शत बार है।।
चेतन चिंतामणि रतन, अनुपम अमित अनर्घ्य।
श्री ऋषभेश जिनेश के, चरण चढ़ाऊँ अर्घ्य।।9।।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पंचकल्याणक अर्घ्य

('वीर' छंद)

माता मरुदेवी के उर में, सरवारथ सिद्धि तैं आये।
कृष्ण दोज आषाढ़ शुभ दिवस, आनंद मंगल हैं छाये।।

ॐ ह्रीं श्री आषाढ़कृष्णद्वितीयायां गर्भमंगलमण्डिताय श्री आदिनाथ-जिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

चैत्र कृष्ण नवमी को जन्मे, नगर अयोध्या शुद्ध हुआ।
नाभिराय मरुदेवी नंदन, त्रिभुवन में आनंद हुआ।।

ॐ ह्रीं श्री चैत्रकृष्णनवम्यां जन्ममंगलमण्डिताय श्री आदिनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

नीलांजना मरण को लखकर, भाव विरक्ति का जागा।
चैत्र कृष्ण नवमी के दिन ही, भाव असंयम का भागा।।

ॐ ह्रीं श्री चैत्रकृष्णनवम्यां तपोमंगलमण्डिताय श्री आदिनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

चार घातिया क्षय कर प्रभु, कैवल्यनिधि को प्राप्त किया।
एकादशी कृष्ण फाल्गुन की, तीर्थंकर पद आप लिया।।

ॐ ह्रीं श्री फाल्गुनकृष्णैकादश्यां केवलज्ञानकल्याणकप्राप्ताय श्री आदिनाथ-जिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

माघ कृष्ण चौदस के शुभ दिन, गुणस्थान से पार हुए।
वसु विधि नष्ट हुए प्रभुजी के, वसु वसुधा को प्राप्त हुए।।

ॐ ह्रीं श्री माघकृष्णचतुर्दश्यां मोक्षमंगलमण्डिताय श्री आदिनाथ-जिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

('दोहा' छंद)

आदिनाथ भगवान ने कहा, अनादि तत्त्व।
गुण-पर्यय अरु द्रव्य का, पृथक् बताया सत्त्व।।
धर्मी बिन न धर्म हो, समझाया यह मर्म।
निज आश्रय से प्रकट हो, सुख दाता यह धर्म।।

('पद्धरि' छंद)

युग की आदि में हे जिनेश, मिथ्यातम विनशायो दिनेश।
षट् द्रव्य और उनके विशेष, समझाये त्रिभुवन पति अशेष।।
भविजीवन को शिवमग बताय, निज का सुख निज में ही दिखाय।
आतम स्वरूप अद्भुत अनूप, है अज्ञ नहीं न रंक भूप।।
चेतन रागी न वीतराग - ऐसा स्वभाव निज मांहि पाग।
गुण-पर्यय के भी नाहिं भेद, है समयसार तो बस अभेद।।
परिणमन नित्य परिणाम मांहिं, निज आतम तो बस ध्रुव रहाहिं।
चेतन तो है ध्रुव, नित्य शुद्ध, पर्यय है क्षणिका अरु अशुद्ध।।

पर्यय को ध्रुव का लक्ष्य होय, तब ही अशुद्धि तज शुद्ध होय।
आतम तो गुणमय है सनाथ, जग को बतलाया आदिनाथ।।
निज दर्शन ही समकित कहाय, निज ज्ञान ही सम्यग्ज्ञान गाय।
निज आतम में जब रमण होय, सम्यक् चारित्र भी तभी होय।।
बस इतना ही है मोक्षमार्ग, आया अवसर चेतन तूं जाग।
निज आतम की महिमा पिछान, निज को बस जिनवरसम ही जान।।
निज आतम की शक्ति अनंत, जिसके गुण गावत हैं सुसंत।
ऋषभेश कही महिमा अपार, हो उनको मेरा नमस्कार।।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

आदिनाथ भगवान ने, कहा अनादिनाथ।
मन-वच-तन से पूजकर, झुका रहा हूँ माथ।।

पुष्पांजलिं क्षिपामि

वीर शासन जयन्ती

वैशाख शुक्ल दशमी के शुभ दिन, प्रभु ने पाया केवलज्ञान।
समवशरण में नाथ विराजे, पर न हुआ उपदेश महान।।
जिनवचनामृत पान किये बिन, हुए तृषातुर सारे जन।
वीर प्रभो ! अब तो कुछ बोलो, गरजो-बरसो हरो तपन।।
छियासठ दिन के बाद भरत में, सावन का महिना आया।
भव्यजीव के भाग्ये जगे, अरु वचन योग भी है आया।।
इन्द्र गये, गौतम को लाये, भविजन पर कीना उपकार।
इन्द्रभूति का पा निमित्त फिर, बही भरत में अमृत धार।।
धन्य वीर प्रभु, धन्य हैं गौतम, धन्य वीर जिन की वाणी।
धन्य हुई श्रावण की एकम, शासन पाया सुखदानी।।

श्री महावीर पूजन

स्थापना

('वीर' छंद)

जिसने जीता राग-द्वेष को, लोकालोक को जान लिया।
हैं स्वतंत्र सब द्रव्य जगत के, मंगलमय उद्घोष किया।।
अंतिम शासन नायक प्रभुवर, नाम तुम्हारा है महावीर।
मोह-क्षोभ से रहित शांत-शिव, दोष रहित हो अति गंभीर।।

ॐ ह्रीं श्री महावीरजिनेन्द्र! अत्र अवतर अवतर संवौषट्, अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः, अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् पुष्पांजलि क्षिपेत्।

('अवतार' छंद)

जिनवर दर्शन कर आज, प्रभुता पहचानी।
हूँ गुण अनन्त भण्डार, निज शक्ति जानी।।
शुद्धातम सा परिशुद्ध, शीतल जल लाया।
जन्मादि रहित निज भाव, अब मन को भाया।।

ॐ ह्रीं श्री महावीरजिनेन्द्राय जन्म-जरा-मृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

जीवत्व शक्ति से नाथ, मैं तो हूँ जीता।
निज शक्ति से अनजान, दुख जल हूँ पीता।।
निज शुद्धातम के मांहिं, भव का भाव नहीं।
हो निज प्रभुता का ज्ञान, तुम सम सौख्य यहीं।।

ॐ ह्रीं श्री महावीरजिनेन्द्राय संसारतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

रागादि रहित शुद्धात्म, ज्यों अक्षत होता।
शुद्धातम के अवलंब, पद अक्षय पाता।।

क्रोधादि विकारी भाव, करते क्षत-विक्षत।
है सिद्ध स्वभाव अनादि, दोषों से विरहित।।

ॐ ह्रीं श्री महावीरजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

विषयों की तृष्णा त्याग, निज आनंद पिया।
तुम नाम हुआ महावीर, मन्मथ जीत लिया।।
नहीं अस्त्र-शस्त्र है हाथ, निज बल से जीता।
मैं जीतूँ दुर्जय काम, अनुभव रस पीता।।

ॐ ह्रीं श्री महावीरजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं नि. स्वाहा।

है शक्ति वीर्य अनूप, करती स्व रचना।
जड़ भोजन का न काम, चिति भोजन अपना।।
सुख शक्ति प्रगटे देव, मिटती आकुलता।
निज वैभव का हो ज्ञान, तो आनंद होता।।

ॐ ह्रीं श्री महावीरजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं नि. स्वाहा।

है स्व-पर प्रकाशक शक्ति, सबका ज्ञान करे।
पर न ज्ञेयों में जाये, निज में विश्राम करे।।
ज्ञेयों से ना हो ज्ञान, न उनको लावे।
अद्‌भुत शक्ति यह देव, अचरज उपजावे।।

ॐ ह्रीं श्री महावीरजिनेन्द्राय मोहांधकारविनाशनाय दीपं नि. स्वाहा।

हैं क्षमा आदि दश धर्म, चेतन गंधमयी।
प्रगटें मुझको हे नाथ, हैं आनंदमयी।।
निष्कर्म स्वरूप निजात्म, जब अनुभव आवे।
सब कर्म स्वयं जल जायें, आनंद छा जावे।।

ॐ ह्रीं श्री महावीरजिनेन्द्राय अष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

हैं सरस सुवासित नित्य, फल चैतन्यमयी।
जो रस चख ले इक बार, होवे कालजयी।।

तुम मुक्त हुए महावीर, मैं मुक्ति पाऊँ।
भव भ्रमण मिटे इस बार, यह फल मैं पाऊँ।।

ॐ ह्रीं श्री महावीरजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

प्रभु दर्शन-ज्ञान-चरित्र, गुण एकत्र करूँ।
पर ज्ञेयों का तज साथ, बस निज में उतरूँ।।
इन्द्रादिक अपद स्वरूप, इनकी चाह गयी।
चैतन्य धातुमय गेह, की बस लगन लगी।।

ॐ ह्रीं श्री महावीरजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पंचकल्याणक अर्घ्य

('मानव' छंद)

आषाढ़ शुक्ल षष्ठी दिन, प्रभु त्रिशला के उर आये।
षट् मास पूर्व से भू पर, इन्द्रों ने रत्न बरसाये।।

ॐ ह्रीं आषाढ़शुक्लषष्ठम्यां गर्भमंगलमण्डिताय श्री महावीरजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

है कुण्डग्राम शुभनगरी, जहाँ वीर ने जन्म लिया था।
थी चैत्र त्रयोदशी शुक्ला, त्रिभुवन आनंद हुआ था।।

ॐ ह्रीं चैत्रशुक्लत्रयोदश्यां जन्ममंगलमण्डिताय श्री महावीरजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मंगसिर कृष्णा दशमी को, प्रभु ने तप धारण कीना।
लौकान्तिक दिवि से आये, अनुमोदन कर सुख लीना।।

ॐ ह्रीं मंगसिरकृष्णदशम्यां तपोमंगलमण्डिताय श्री महावीरजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

वैशाख शुक्ल दशमी को, घातिया कर्म क्षय कीना।
कैवल्य प्राप्त कर प्रभु ने, आनंद अतीन्द्रिय लीना।।

ॐ ह्रीं वैशाखशुक्लदशम्यां केवलज्ञानकल्याणकप्राप्ताय श्री महावीर-जिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मावस कृष्णा कार्तिक की, प्रभु ने मुक्ति पाई थी।
पावा की पावन भूमि, निर्वाण क्षेत्र गाई थी।।

ॐ ह्रीं कार्तिककृष्णअमावश्यायां मोक्षमंगलमण्डिताय श्री महावीर-जिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

('दोहा' छंद)

सुर-नर पति वंदन करें, गणधर गुण सुमराहि।
हम किह विधि वर्णन करें, चरण कमल लौ लाहिं।।

('वीर' छंद)

चैत्र शुक्ल तेरस को जन्में, माँ त्रिशला के प्यारे हो।
फिर भी आप अजन्मे हो, अरु सारे जग से न्यारे हो।।
अस्त्र-शस्त्र नहीं धारे प्रभुवर, नहीं किसी से युद्ध किया।
फिर भी प्रभु अतिवीर-वीर, महावीर तुम्हारा विरद हुआ।।
न कण पर, न जन पर ही, किंचित् अधिकार तुम्हारा है।
त्रिभुवन पति फिर भी कहलाते, यह अतिशय सुखकारा है।।
मोहभाव से रहित हो गये, दया किसी पर नहीं करते।
परम दयालु दीनानाथ हो, फिर भी लोग कहा करते।।
मुनि दीक्षा धारी थी जिस दिन, तब से प्रभुवर मौन रहे।
अनेकान्तमय वस्तुव्यवस्था, हे प्रभु तुम बिन कौन कहे?
तुम पर के कर्ता नहीं प्रभु हो, एकमात्र बस ज्ञाता हो।
फिर भी जग कल्याणक हो, अरु मोक्षमार्ग के दाता हो।।
मर्दन किया मोह का तुमने, क्रोध भाव को नष्ट किया।
हाथ नहीं हथियार हैं फिर भी, मान शत्रु को भगा दिया।।

वीत लोभ अरु माया होकर, जीता सभी कषायों को।
रति नहीं करते पंच विषय में, त्यागा सभी विभावों को।।
भक्तजनों में राग नहीं है, नहीं अभक्तों पर है द्वेष।
गति चारों का कर अभाव प्रभु, पाई गति पंचम परमेश।।
वाद-विवाद से धर्म न होता, कर लो सब जन आतमज्ञान।
नहीं अपेक्षा करें किसी की, तभी बनेंगे हम भगवान।।
कीमत नहीं स्वयं की जिसको, उसकी कीमत कहीं नहीं।
जब कीमत निज की आई तब, उससे कीमती कोई नहीं।।
यदि स्वभाव को न जाना तो, चतुर्गति का भ्रमण मिले।
होनहार यदि होय भली तो, महावीर का पंथ खिले।।
महावीर भगवान की जय हो, तन-मन से जब यह गायें।
धन्य-धन्य है उनका जीवन, महावीर गुण जो गायें।।
करूँ समर्पण निज का निज में, लौट न भव में आऊँगा।
महावीर के पथ पर चलकर, महावीर बन जाऊँगा।।

ॐ ह्रीं श्री महावीरजिनेन्द्राय जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

वीतराग सर्वज्ञ जिनेश्वर, हो चौबीसवें तीर्थंकर।
तव प्रसाद से हमें मिला है, जिनशासन यह अभयंकर।।

पुष्पांजलिं क्षिपामि

भावना

विविध शुभाशुभ भाव जीव यह, करता रहता है हर बार।
पाता है आकुलता निशदिन, दुखमय चतुर्गति संसार।।
शान्ति मानता परद्रव्यों से, विषयों की रहती आशा।
जैसे ही आतम रुचि लगती, मोह शत्रु सत्त्वर नाशा।।
नहीं विषय सुख रुचिकर लगते, जन्म जगत में लगे कलंक।
दश वृष धरकर मिले विपाशा, नष्ट होंय सब विधि के पंक।।

श्री दशलक्षण पूजन

स्थापना

('वीर' छंद)

क्षमा-मार्दव-आर्जव-शुचि-सत्, हैं जिय को आनंददायी।
संयम, तप अरु त्याग धरे जो, निकट भव्य है वह भाई।।
आकिंचन, ब्रह्मचर्य धरम दस, इनकी महिमा उर में धार।
दशलक्षण को धारण करके, हो जाओ भवसागर पार।।

ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्म ! अत्र अवतर अवतर संवौषट्, अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः, अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् पुष्पांजलिं क्षिपामि।

अष्टक

क्रोधादिक भावों में रत हो, चेतन नित प्रति है जलता।
क्षमा भाव निर्मल जल सिंचन, से पाई निज शीतलता।।
क्षमा भाव धारक मुनिवर के, पूज रहा मैं चरण कमल।
जन्म-जरा-मृतु नाश करन को, चरणार्पित है निर्मल जल।।

ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्मांगाय जन्म-जरा-मृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

तन-धन-पद संयोग क्षणिक सब, पर उनको अपना माना।
अहंकार में फूला फिरता, निज स्वरूप को न जाना।।
मान रहित मुनिवर के चरणों, में है बार-बार वंदन।
भवाताप मम शीघ्र शमन हो, चरणों में अर्पित चंदन।।

ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्मांगाय संसारतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

लौकिक कार्य सिद्धि के हेतु, करता रहता मायाचार।
मन-वच-तन में नहीं एकता, कैसा मेरा दुर्व्यवहार।।

सरल स्वभावी मुनिराजों के, चरणों में सर्वांग विनत।
आर्जव धर्म प्राप्त हो स्वामी, चरणों में अर्पित अक्षत।।

ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्मांगाय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं नि.।

धन-पद-यश का लोभी होकर, करता रहता हूँ बहुपाप।
तृष्णा ज्वाला में जलता नित, पाता हूँ केवल संताप।।
लोभ रहित शुचिता के पालक, मुनिराजों को है वंदन।
हे सिद्धों के प्रिय नंदन तव, चरणार्पित बहुमूल्य सुमन।।

ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्मांगाय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

सत् को भूल, असत् में अटका, भटका चतुर्गति निर्जन।
निज सत्ता से अनजाना मैं, विषय भोग में रहा मगन।।
सत्यधर्म के धारक मुनिवर, विषय रोग के निष्पृह वैद्य।
प्राप्त करूँ मैं सत्य धर्म को, चरणार्पित सादर नैवेद्य।।

ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्मांगाय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

संयम हित मानव तन पाया, पर भायी विषयों की धूल।
पुण्योदय में साधन पाकर, फूला निजस्वभाव को भूल।।
मुनिवर संयम दिग्गदर्शक हैं, महिमामय चैतन्य प्रदीप।
संयम धार, विषय तम त्यागूँ, अर्पित करता हूँ यह दीप।।

ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्मांगाय मोहांधकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

परद्रव्यों में अपनापन कर, सदा भोगता हूँ संताप।
सुखदायक तप को तजकर मैं, निशि-दिन करता रहता पाप।।
उत्तम तप के धारक मुनिवर, अनुभवते चेतन चिद्रूप।
तप को धारूँ कर्म निवारूँ, अर्पित करता हूँ मैं धूप।।

ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्मांगाय अष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं नि.।

स्वर्गादिक के विषफल पाकर, अमृतसम उनको माना।
उभयलोक हितकारी उत्तम, त्याग धर्म में दुःख माना।।
निज अनुगामी, सच्चे दानी, मुनिवर जीवन हुआ सफल।
राग आग तज, निज में आऊँ, अर्पित करता हूँ यह फल।।

ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्मांगाय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

परद्रव्यों में अपनापन कर, उनमें रमता आया हूँ।
अरस-अरूपी-सुखमय चेतन, को अब तक बिसराया हूँ।।
बाह्य जगत में कुछ न मेरा, मैं तो हूँ चेतन चिद्रूप।
हूँ अनंत गुण शक्तिधारी, रंक नहीं मैं तो हूँ भूप।।
आकिंचन अरु ब्रह्मचर्यमय, मुनिवर जीवन होय अनर्घ्य।
क्षमा आदि दशधर्म प्रकट हों, करूँ समर्पित मैं यह अर्घ्य।।

ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्मांगाय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि. स्वाहा।

क्षमा

('दोहा+वीर' छंद)

चेतन अरु जड़ द्रव्य का, स्वयं परिणमन होय।
इष्टानिष्ट की कल्पना, में ही प्राणी रोय।।
संयोगों का मिलना और बिछुड़ना होता कर्माधीन।
मैं दुर्बुद्धि निशि दिन चाहूँ, सब ही हों मेरे आधीन।।
क्षमाभाव को भूला चेतन, क्रोधानल में नित जलता।
क्षमाभाव के धारक धर्मी, पाते तत्क्षण शीतलता।।

ॐ ह्रीं उत्तमक्षमाधर्मांगाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मार्दव

तन-धन-पद जो भी मिला, मान उसे निजरूप।
मान भाव में दुखित हो, भूला मैं चिद्भूप।।

मान महादु:खकारण भाई, यह कैसे हो सुखदायी?
पर पद को निज मान अकड़ कर, कोमलता निज बिसराई।।
सबको ही मैं निज सम मानूँ, लघु-गुरु कोई न है भाई।
मार्दव धर्म हृदय में धारूँ, तब ही सुख-शान्ति पाई।।
ॐ ह्रीं उत्तममार्दवधर्मांगाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

आर्जव

चेतन ज्ञाता मात्र है, गुण अनंत भण्डार।
कर्ता या नर मानना, ही है मायाचार।।
मन-वच-काया की विरूपता, कहलाती माया व्यवहार।
है सर्वज्ञ स्वभावी चेतन, तज दूँ मैं सब कुटिल विचार।।
परिणामों में ऋजुता से ही, यह नरभव शोभा पाता।
धर्म आर्जव धारक धर्मी, लौट न फिर भव में आता।।
ॐ ह्रीं उत्तमआर्जवधर्मांगाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शौच

तन का मलिन स्वभाव है, चेतन है शुचि रूप।
रागादिक मल त्याग कर, धारो शौच अनूप।।
लोभादिक भावों के कारण, परिणति हुई अपावन है।
तज विभाव निरखूँ स्वभाव को, जो अति ही मनभावन है।।
धन-पद-यश अरु विषय लोभ में, पाई नित आकुलता है।
खुले शौच का धर्म द्वार फिर, तजूँ विभाव विकलता है।।
ॐ ह्रीं उत्तमशौचधर्मांगाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सत्य

सत् स्वभाव है आत्मा, नाश कभी न होय।
सत् स्वभाव अवलंब ही, असत् तिमिर को खोय।।

समझ सकूँ वस्तुस्वभाव को, सत्य समझ कर करूँ कथन।
देश-काल अरु विधि को समझूँ, तभी होयेंगे सत्य वचन।।
है वस्तु को है ही कहना, और असत् को कहूँ असत्।
धर्म विरोधी, निंदा गर्हित, वचन त्याग लूँ धर्म सु सत्।।

ॐ ह्रीं उत्तमसत्यधर्मांगाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

संयम

सुरपति को भी न मिले, हमें सहज मिल जाय।
संयम द्वय विध धारकर, निज जीवन महकाय।।
बिन संयम के चहुँगति भटका, दुःख ही दुःख मैंने पाया।
अब तो चेतो चेतन प्यारे, यह अपूर्व अवसर आया।।
संयम बिन यदि जीवन बीता, दुःख ही दुःख को पाऊँगा।
चिन्ता मणि सम नरतन पाकर, जाने किस गति जाऊँगा।।

ॐ ह्रीं उत्तमसंयमधर्मांगाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

तप

कर्म गिरि पर वज्रसम, उत्तम तप उर धार।
निश्चय तप निज में रमण, द्वादश विधि व्यवहार।।
द्वादश विधि व्यवहार तप कहे, अंतरंग-बहिरंग के भेद।
निश्चय तप तो एक रूप है, बस स्वरूप में रहो अभेद।।
स्व अध्ययन ही स्वाध्याय है, स्वाध्याय से मिले समाधि।
है स्वाध्याय परम तप भाई, जिससे मिटती है भव व्याधि।।

ॐ ह्रीं उत्तमतपधर्मांगाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

त्याग

राग-द्वेष-मोहादि ही, जलते बनकर आग।
समता-शान्ति सुख मिले, कर मिथ्यातम त्याग।।

मिथ्यातम के त्याग किये बिन, आतम का कैसा पोषण।
त्यागभाव के अहंकार से, निजानंद का हो शोषण।।
परपदार्थ की ममता त्यागूँ, अरु अभक्ष्य का त्याग करूँ।
त्याग धर्म को ग्रहण करूँ मैं, नर भव का सौभाग्य लहूँ।।

ॐ ह्रीं उत्तमत्यागधर्मांगाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

आकिंचन्य

अरस-अरूपी-शुद्ध मैं, मेरा चेतन रूप।
मेरा न परमाणु भी, फिर भी त्रिभुवन भूप।।
मैं परिपूर्ण न किंचित् मेरा, यही भाव आकिंचन्य धर्म।
अपने में अपनेपन से ही, नष्ट होयेंगे आठों कर्म।।
तन-मन-धन का ममत भाव ही, महा परिग्रह होता है।
तज ममता, समता को धारो, धर्म आकिंचन होता है।।

ॐ ह्रीं उत्तमआकिंचन्यधर्मांगाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

ब्रह्मचर्य

निज आतम में रमण ही, है उत्तम ब्रह्मचर्य।
ब्रह्मभाव की लगन से, मिले मुक्ति साहचर्य।।
काम वासना है सुख घातक, आकुलता की जननी है।
माता-बहिन-सुता पहचानो, यह व्यवहार की कथनी है।
निज शुद्धात्म सरस रस चखकर, त्यागूँ पंचेन्द्रिय के रस।
बाह्य विषय में सुख न भाई, अब तो निज आतम में बस।।

ॐ ह्रीं उत्तमब्रह्मचर्यधर्मांगाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

('दोहा' छंद)

दशलक्षण अनुपम सुमन, खिले आत्म उद्यान।
करके अंतर्दृष्टि को, अब इनको पहचान।।

क्षमा आदि दश धर्म ही, करते भव से पार।
धर्म एक पर कथन दो, निश्चय अरु व्यवहार।।

('मानव' छंद)

दशलक्षण पर्व की आई, मदमाती पवन सुहानी।
अमृतधारा बरसाती, बरसे है माँ जिनवाणी।।
क्रोधादि कषायों की है, भीषण ज्वाला अन्तर में।
जिनवचनामृत में भीगो, ज्यों शीतल जल निर्झर में।।
दशलक्षण धर्म सु धारो, क्रोधादि कषाय निवारो।
यदि सुख-शान्ति चाहो तो, विषयों से चित्त हटाओ।।
है क्रोध महादु:खदायी, चेतन को जो है दहता।
है क्षमा शान्ति सुखदायी, जिसमें अमृत रस बहता।।
अनुकूल संयोगों से ही, यह मान महा विष होता।
मृदुता को यदि धारो तो, चहुँ गति में फिरे न रोता।।
मन-वच-तन में हो समता, भावों में होवे ऋजुता।
हो उत्तम आर्जवधारी, फैली सर्वांग सरसता।।
है लोभ महा अघ कारण, कैसे हो दु:ख निवारण।
है शौच विकलता नाशक, निज वैभव परम प्रकाशक।।
है सत् स्वभाव आतम का, अपनी सत्ता पहचानो।
निज सत् स्वरूप को लखकर, सत् वस्तुस्वरूप बखानो।।
निज में ही सीमित रहना, संयम का पहनो गहना।
जिन द्वय विध संयम धारा, वे ही पहुँचे भवपारा।।
है तप की शोधक दहनी, जो कर्मकाष्ठ को दहती।
जो द्वादश तप हैं धरते, वे मुक्तिरमा को वरते।।

जो आस्रव भाव सदा ही, हैं चेतन को दुःखदायी।
रागादिक आस्रव त्यागो, अब निज को निज में पागो।।
हूँ गुण अनंत का धारी, ये ही हैं मम परिवारी।
परमाणु मात्र न मेरा, चाहूँ चैतन्य बसेरा।।
निज ब्रह्म भाव में रहना, विषयों में अब न रमना।
है ब्रह्मचर्य सुख सागर, आनंदामृत की गागर।।
दशधर्म महासुखदायी, है वीतरागता भायी।
अब इनको ही तुम ध्याना, निश्चित ही शिवपुर पाना।।

ॐ ह्रीं उत्तमक्षमादिदशधर्मांगाय जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

('सोरठा' छंद)

उतरो भव से पार, दशलक्षण को धारकर।
वे डूबे मंझधार, इनको जो न धर सके।।
भव जल के निधि मांहिं, दशलक्षण नौका सुखद।
नाविक उत्तम भाव, मिटे कथा भव की दुःखद।।

पुष्पांजलिं क्षिपामि

ज्ञानी जन यों कहते हैं...

आग लगाकर शीतलता की चाह व्यर्थ ही होती है।
राग आग में जो जलता है, उसे मुक्ति नहीं होती है।।
निज निवास में रहने पर ही, मिलता है हमको आराम।
त्यों ही निज में वास करे, जब चेतन पाता है विश्राम।।
पर प्रदत्त सुख भी दुख ही है, सभी विज्ञ जन कहते हैं।
विषयज संयोगज सुख दुःख है, ज्ञानी जन यों कहते हैं।।

स्वर्णपुरी से प्रेरित

शाश्वतधाम में विराजमान जिनबिंबों की पूजन

स्थापना

('वीर' छंद)

शाश्वतधाम की पुण्य धरा पर, वीतराग जिनवर शोभित।
श्री सीमंधर-आदिनाथ प्रभु, पदमप्रभ लख भवि मोहित।।
शांतिनाथ अरु नेमिनाथ प्रभु, सबको शान्ति प्रदायक हैं।
महावीर प्रभु यहाँ विराजित, जो सबको सुखदायक हैं।।
वीतराग-सर्वज्ञ-हितंकर, सभी जिनेश्वर होते हैं।
उन सम निज स्वरूप जो जाने, मोह तिमिर वे खोते हैं।।

ॐ ह्रीं श्री शाश्वतधामस्थित समस्त जिनेन्द्राः ! अत्र अवतरत अवतरत संवौषट्, अत्र तिष्ठत तिष्ठत ठः ठः, अत्र मम सन्निहितो भवत भवत वषट् पुष्पांजलि क्षिपामि।

('वीर' छंद)

बद्धाबद्ध हों पुद्गल कोई, उनसे न चेतन संबंध।
गुण-पर्यय के भी विकल्प से, शुद्धातम को होता बंध।।
न प्रमत्त-अप्रमत्त है ज्ञायक, कर्मों से जो बंधा नहीं।
अरस-अरूपी भगवन हूँ मैं, रंग-राग का लेश नहीं।।
रंग-राग से भिन्न चिदातम, लखकर शाश्वत सुख पाऊँ।
शुद्धातम शीतल जल अर्पित, अजरामर पद पा जाऊँ।।

ॐ ह्रीं श्री शाश्वतधामस्थित समस्तजिनेन्द्रेभ्यो जन्म-जरा-मृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

अशरण-अशुचि और दुखद हैं, जड़मय सारे आस्रवभाव।
एक-शुद्ध-निर्मम निज निरखूँ, रागादिक का करूँ अभाव।।
मोह-राग तो कर्मज हैं सब, ज्ञायक से संबंध नहीं।
कर्तापन तज ज्ञाता माने, होता उसको बंध नहीं।।

मैं कर्तृत्व भाव को त्यागूँ, ज्ञातापन ही स्वीकारूँ।
शाश्वत सुरभित चंदन अर्पित, भवाताप को निरवारूँ।।

ॐ ह्रीं श्री शाश्वतधामस्थित समस्तजिनेन्द्रेभ्यो संसारतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

अशुभ भाव दुखमय ही होते, अरे अज्ञ भी कहते हैं।
पर शुभ भी संसार हेतु हैं, यही विज्ञ जन कहते हैं।।
भाव शुभाशुभ सब विभाव हैं, मैं तो हूँ बस ज्ञायकभाव।
शाश्वत ज्ञायक की महिमा से, होता है संसार अभाव।।
आस्रवभाव सदा मैं त्यागूँ, निज आतम में करूँ रमण।
अक्षत कर चरणों में अर्पित, पाऊँ सुखमय ज्ञान सदन।।

ॐ ह्रीं श्री शाश्वतधामस्थित समस्तजिनेन्द्रेभ्यो अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

क्रोध क्रोध में ही रहता है, ज्ञान में रहता केवल ज्ञान।
क्रोध ज्ञान में, ज्ञान क्रोध में, यही मान्यता है अज्ञान।।
एक वस्तु की अन्य वस्तु न, सभी स्वयं में रहते हैं।
राग-ज्ञान में भेदज्ञान हो, उसको संवर कहते हैं।।
भेदज्ञान से संवर होता, भेदज्ञान से होते सिद्ध।
पुष्प चढ़ाऊँ काम नशाऊँ, निज आतम को करूँ प्रसिद्ध।।

ॐ ह्रीं श्री शाश्वतधामस्थित समस्तजिनेन्द्रेभ्यो कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं नि. स्वाहा।

ज्ञान और वैराग्य कवच ले, जीव रणांगण में उतरे।
दिखे कदाचित् विषयभोग में, पर ज्ञानी न बंध करे।।
भेदज्ञान की अतुलित शक्ति, जैसे जल में रहे कमल।
राग-रंग अरु परिग्रह में भी, ज्ञानी रहते सदा विमल।।
ज्ञान और वैराग्यशक्ति से, कर्म निर्जरित होते हैं।
गुण अनंतमय चरु को चखकर, क्षुधा रोग को हरते हैं।।

ॐ ह्रीं श्री शाश्वतधामस्थित समस्तजिनेन्द्रेभ्यो क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं नि. स्वाहा।

कर्म वर्गणा–करण–घात अरु, या हो मन–वच–काय प्रयोग।
यह सब बंधन हेतु नहीं है, हेतु राग संग हो उपयोग।।
रागादि संग करे एकता, वह ही बंध कराती है।
कर्मबंध न उनको होता, निज रुचि जिनको आती है।।
है अज्ञान बंध का कारण, सुख का कारण सम्यग्ज्ञान।
सम्यग्ज्ञान दीप कर अर्पित, मोह नशा होऊँ अम्लान।।

ॐ ह्रीं श्री शाश्वतधामस्थित समस्तजिनेन्द्रेभ्यो मोहांधकारविनाशनाय दीपं नि. स्वाहा।

कर्म–आत्म का द्विधाकरण ही, सुखमय मोक्ष कहाता है।
मात्र बंध के चिंतन से तो, नहीं मुक्ति को पाता है।।
अपराधी तो बंधन पाते, चतुर्गति में भ्रमते हैं।
निर–अपराधी निर्भय होकर, मुक्त स्वभाव में रमते हैं।।
अष्ट कर्म विरहित शुद्धातम, शाश्वत सुख से है भरपूर।
धूप चढ़ाऊँ कर्म नशाऊँ, निज आतम से रहूँ न दूर।।

ॐ ह्रीं श्री शाश्वतधामस्थित समस्तजिनेन्द्रेभ्यो अष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

लोचनवत् ही रहे अकर्ता और अवेदक ज्ञायक भाव।
पर से है संबंध न किंचित्, है अनादि से यही स्वभाव।।
ज्ञान, ज्ञान में ही रहता है, नहीं ज्ञेयमय होय कभी।
ज्ञेय–ज्ञान की लखो भिन्नता, शाश्वतधाम में आओ अभी।।
पर कर्तृत्व स्वरूप न मेरा, ज्ञाता और अवेदक हूँ।
सरस–सुवासित फल अर्पित कर, मुक्तिमहल में सदा रहूँ।।

ॐ ह्रीं श्री शाश्वतधामस्थित समस्तजिनेन्द्रेभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

शाश्वतधाम महासुखकारी, रंग–राग से भिन्न सदा।
मिथ्यातम की मोह निशा में, निज स्वरूप न लखा कदा।।

है चैतन्यधातु से निर्मित, शाश्वतधाम सदा मेरा।
मंगलमय यह अवसर आया, उसमें ही अब करूँ बसेरा।।
शाश्वतधाम से दूर रहूँ न, शाश्वत सुख को ही पाऊँ।
निज गुण अर्घ्य समर्पण करके, लौट न फिर भव में आऊँ।।

ॐ ह्रीं श्री शाश्वतधामस्थित समस्तजिनेन्द्रेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

श्री सीमंधर भगवान का अर्घ्य

('वीर' छंद)

निज सीमा को धारण करते, सीमंधर कहलाते हैं।
निज सीमा को कोई न छोड़े, सबको यह समझाते हैं।।
द्रव्य-क्षेत्र अरु कालभावमय, निज सीमा है बतलाई।
निज सीमा को जो स्वीकारे, उसकी ही महिमा भाई।।

ॐ ह्रीं श्री सीमंधरजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पद्मप्रभ भगवान का अर्घ्य

('वीर' छंद)

पद्म कांतिमय पद्मप्रभ हैं, पद्म चिह्न से जो शोभित।
जो निज पर ही मोहित रहते, सारा जग उन पर मोहित।।
जल से भिन्न पद्म रहता है, त्यों तुम जड़ कर्मों से भिन्न।
हैं अनंत गुण पर्यायें प्रभु, उनसे रहते सदा अभिन्न।।

ॐ ह्रीं श्री पद्मप्रभजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शान्तिनाथ भगवान का अर्घ्य

('दोहा' छंद)

राग अरु विषय-कषाय से, रहता जगत अशान्त।
दोष अठारह से रहित, प्रभुवर रहो प्रशान्त।।

शांत छवि लख आपकी, मैंने पाई शांति।
शांतिनाथ निज में लखूँ, मिटे अनादि भ्रान्ति।।

ॐ ह्रीं श्री शांतिनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

आदिनाथ भगवान का अर्घ्य

('चौपाई' छंद)

निज अनादि वैभव प्रकटाया, हैं स्वतंत्र सब ही समझाया।
विश्व अनादि-अनंत बताया, सिद्धों सम मम वैभव गाया।।
नाभिनंदन ऋषभ जिनेशा, चरणों में नत रहें सुरेशा।
तव पथ पर जो चलें हमेशा, मिट जायें भव-भव के क्लेशा।।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

महावीर भगवान का अर्घ्य

('वीर' छंद)

मतिज्ञान से रहित हो सन्मति, शस्त्र रहित पर हो महावीर।
अगुरुलघु पर वर्धमान हो, निर्भय करते हो अतिवीर।।
वीर नाम है विरद आपका, त्रिशलानंदन कहलाते।
मुक्तिवधु के प्रियवर को लख, सुर-नर-मुनि नत हो जाते।।

ॐ ह्रीं श्री महावीरजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

नेमिनाथ भगवान का अर्घ्य

('वीर' छंद)

मुक्तिरमा को चले ब्याहने, राजुल का है मोह तजा।
जड़ शृंगार सभी है त्यागा, रत्नत्रय से लिया सजा।।
गिरि गिरनार शिखर पर चढ़कर, निज अंतर में निरत हुए।
नेमिनाथ के श्रीचरणों में, हम सब सादर विनत हुए।।

ॐ ह्रीं श्री नेमिनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मानस्तंभ का अर्घ्य

('दोहा' छंद)

श्री सीमंधर नाथ का, मानस्तंभ महान।
अंतर बाह्य सु लक्ष्मी से, अनुपम महिमावान।।
गुण-पर्यय अरु द्रव्य से, मैं अरहन्त समान।
सभी जीव हैं सिद्ध सम, अरु त्रिकाल निरमान।।

ॐ ह्रीं श्री मानस्तंभस्थित श्री सीमंधरजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

('दोहा' छंद)

आदि, पद्मप्रभ, शांतिप्रभु, नेमिनाथ महावीर।
श्री सीमंधरनाथ प्रभु, मेटो भव की पीर।।
जिनवर अरु जिनवच भवन, शोभित शाश्वतधाम।
भाव सहित वंदन करो, पाओ शिव अभिराम।।

('मानव' छंद)

इस भव अटवी में भ्रमते, मैंने अगणित दु:ख पाये।
अब भाग्य जगा है मेरा, जो प्रभु दर्शन को आये।।
प्रभुवर के दर्शन करके, मैं निज दर्शन को पाऊँ।
अविनाशी शाश्वत ध्रुव हूँ, अब निज में ही रम जाऊँ।।
हैं तीन लोक में अनुपम, शाश्वत जिनबिम्ब जिनालय।
जो आत्मस्वरूप दिखाते, मानो वे हैं शिक्षालय।।
भविजन निजरूप निरखने, जिन प्रतिमा हैं पधराते।
प्रभु शांतछवि को लखकर, निज शांत भाव नित ध्याते।।
है शाश्वतधाम मनोरम, जो शाश्वत रूप दिखाता।
जिन वीतराग मुद्रा लख, उनकी महिमा उर गाता।।
अपनी सीमा में शोभित, सीमंधरनाथ विराजे।
जो वस्तुस्वरूप बताते, शुद्धातम महिमा गाते।।

युग दृष्टा हे आदीश्वर, तुम मुक्तिमार्ग दिखलाया।
निज प्रभुता भवि पहचानी, निष्ठुर उन्मार्ग विलाया।।
ज्यों पद्म नीर में रहता, निर्लिप्त कांतियुत शोभित।
त्यों पद्म प्रभ परमेश्वर, तव छवि लख भवि अलि मोहित।।

श्री शांतिनाथ को लखकर, निज परमशांत निधि मिलती।
ज्यों दिनकर किरणावली से, पंकज पंक्ति है खिलती।।
श्रेणी पर कर आरोहण, नेमि उतरे अंतर में।
तब समता भाव जगा है, रागांश न अभ्यंतर में।।

श्री वीरनाथ स्वामी का, ये शासन दिव्य सनातन।
स्याद्वादमयी वाणी का, देखो अद्‌भुत अनुशासन।।
है मानस्तंभ प्रभु का, जिनवर महिमा बतलाता।
जिसके दर्शन को पाकर, है मान त्वरित गल जाता।।

है मंगल अवसर आया, यह शाश्वतधाम रचाया।
मानो मुक्ति को वरने, है मण्डप आज सजाया।।
अब परिणति दुल्हन बनकर, चेतन को वरने आई।
है प्रथम मिलन का अवसर, उर में किंचित् सकुचाई।।

हे प्रभु तव साक्षी में ही, अब मंगल परिणय होगा।
प्रियतम के दुःखद विरह का, अब अंत यहाँ पर होगा।।
समिति, गुप्ति, अनुप्रेक्षा, सब आयीं गीत सुनाने।
परिणति वरमाल लिये हैं, प्रमुदित शाश्वत सुख पाने।।

ॐ ह्रीं शाश्वतधामस्थित समस्तजिनेन्द्रेभ्यो जयमाला पूर्णार्घ्यं नि.स्वाहा।

('वीर' छंद)

शाश्वतधाम में पूजन करके, शाश्वतधाम में आ जाऊँ।
शाश्वतसुख को प्राप्त करूँ मैं, फिर न लौट भव में आऊँ।।

पुष्पांजलिं क्षिपामि

तीर्थराज सम्मेदशिखर में स्थित श्री कुन्दकुन्द कहान नगर में विराजमान जिनबिम्बों की पूजन

स्थापना

('वीर' छंद)

शाश्वत शुद्धातम आश्रय से, निज शाश्वत सुख को पाया है।
हुए अनंतों सिद्ध यहाँ से, शाश्वत तीर्थ कहाया है।।
तीर्थराज सम्मेदशिखर में, कुन्द कहान नगर शोभित।
वीतराग जिनप्रतिमा को लख, भावी सिद्ध हुए प्रमुदित।।
हे जिनदेव पधारो तिष्ठो, मम उर में ही बस जाओ।
मम परिणति तुम सम हो जाये, वीतराग पथ दर्शाओ।।

ॐ ह्रीं श्री तीर्थराज सम्मेदशिखरस्थित श्री कुन्दकुन्दकहाननगरे विराजमान सर्व जिनेन्द्राः अत्र अवतरत अवतरत संवौषट्, अत्र तिष्ठत तिष्ठत ठः ठः, अत्र मम सन्निहितो भवत भवत वषट् पुष्पांजलि क्षिपामि।

('मानव' छंद)

प्रभु वीतराग मुद्रा लख, मैं निज स्वरूप पहचाना।
मैं तो हूँ सिद्धस्वरूपी, अब निज में ही रम जाना।।
जन्मादि रोग क्षय करने, मैं प्रभु चरणों में आया।
शुचि शीतल सलिल चढ़ाकर, शुचिमय शुद्धातम भाया।।

ॐ ह्रीं श्री तीर्थराज सम्मेदशिखरस्थित श्री कुन्दकुन्दकहाननगरे विराजमान समस्तजिनेन्द्रेभ्यो जन्म-जरा-मृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

तुम गुण अनंतमय प्रभु हो, तुमको है सादर वंदन।
मैं निज स्वभाव में रमकर, बन जाऊँ जिन लघुनंदन।।
संसारताप दुःखदायक, जिसमें मैं नित प्रति जलता।
चंदन को करके अर्पण, बस चाहूँ निर आकुलता।।

ॐ ह्रीं श्री तीर्थराज सम्मेदशिखरस्थित श्री कुन्दकुन्दकहाननगरे विराजमान समस्तजिनेन्द्रेभ्यो संसारतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

दर्पण में रूप निरखकर, अज्ञानी मोहित होता।
मैं प्रभु में रूप निरखकर, निज अक्षत रूप संजोता।।
नर नारक पशु सुर गति में, मैं तन धारे हैं अगणित।
अब अक्षय पद को पाऊँ, चरणों में अक्षत अर्पित।।

ॐ ह्रीं श्री तीर्थराज सम्मेदशिखरस्थित श्री कुन्दकुन्दकहाननगरे विराजमान समस्तजिनेन्द्रेभ्यो अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

कामादि विकारों विरहित, प्रभुवर स्वरूप है तेरा।
तुमको लखकर यह माना, ऐसा ही रूप सु मेरा।।
मैं कामजयी बन जाऊँ, है काम महा दुखदायी।
मैं पुष्प चढ़ाकर चाहूँ, निष्काम स्वपद सुखदायी।।

ॐ ह्रीं श्री तीर्थराज सम्मेदशिखरस्थित श्री कुन्दकुन्दकहाननगरे विराजमान समस्तजिनेन्द्रेभ्यो कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

मैं अनाहारी हूँ प्रभु सम, मैंने है अब यह माना।
जड़ भोजन की न आशा, जाना चैतन्य खजाना।।
भव-भव में भोजन कर-कर, भी मैं मरता आया हूँ।
चिर क्षुधा नशाने अब मैं, यह सुरभित चरु लाया हूँ।।

ॐ ह्रीं श्री तीर्थराज सम्मेदशिखरस्थित श्री कुन्दकुन्दकहाननगरे विराजमान समस्तजिनेन्द्रेभ्यो क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जड़ द्रव्यों पर हो मोहित, अब तक मरता आया हूँ।
निज सत्ता न पहिचानी, अब नवजीवन पाया हूँ।।
इस मोह तिमिर में फंसकर, मैं निज स्वभाव न जाना।
है ज्ञान का दीप समर्पित, जानूँ स्वभाव अनजाना।।

ॐ ह्रीं श्री तीर्थराज सम्मेदशिखरस्थित श्री कुन्दकुन्दकहाननगरे विराजमान समस्तजिनेन्द्रेभ्यो मोहांधकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

मैं अरस अरूपी भगवन, हूँ त्रिविध कर्म से विरहित।
हूँ तीन लोक से न्यारा, मैं गुण अनंत से शोभित।।

अज्ञानदशा के कारण, कहता कर्मों ने घेरा।
मैं चढ़ा धूप चरणों में, चाहूँ चैतन्य बसेरा।।

ॐ ह्रीं श्री तीर्थराज सम्मेदशिखरस्थित श्री कुन्दकुन्दकहाननगरे विराजमान समस्तजिनेन्द्रेभ्यो अष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

प्रभु ने मुक्ति फल पाया, वह निज से ही प्रगटाया।
मैं भी निज से प्रगटाऊँ, यह सीख सीखने आया।।
पुण्य-पाप के फल में फंसकर, मुक्ति का फल न जाना।
अब फल से पूजन करके, चाहूँ मुक्ति सुख पाना।।

ॐ ह्रीं श्री तीर्थराज सम्मेदशिखरस्थित श्री कुन्दकुन्दकहाननगरे विराजमान समस्तजिनेन्द्रेभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

अगणित गुणमय मैं आतम, पर भेद सभी मैं मिटाऊँ।
पर्याय से दृष्टि हटाकर, शाश्वत ध्रुव में रम जाऊँ।।
मैं गुण अनंतमय प्रभु हूँ, निज प्रभुता न पहचानी।
मैं करूँ अर्घ्य से पूजन, पदवी अनर्घ्य है पानी।।
कुन्दकुन्द नगर में स्थित, श्री पार्श्व प्रभु को ध्याऊँ।
श्री आदि-चन्द्र-सीमंधर, नेमि जिन पूजा रचाऊँ।।

ॐ ह्रीं श्री तीर्थराज सम्मेदशिखरस्थित श्री कुन्दकुन्दकहाननगरे विराजमान समस्तजिनेन्द्रेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

श्री पार्श्वनाथ भगवान को अर्घ्य

('सवैया' छंद)

अश्वसेन वामा के हैं राजदुलारे जो,
जगत के प्यारे, पर कोई नहीं साथ है।
नगर बनारस में जन्म लीना प्रभु आप,
बाल ब्रह्मचारी रहे नहीं गह्यो हाथ है।
शुक्ल पक्ष श्रावण का, सप्तमी है तिथि शुभ,
कूट सुवर्णभद्र तैं गह्यो मुक्ति हाथ है।

पर की न आस है, नहीं कोई दास है,
अनुपम रस भर्यो ऐसो पारसनाथ है।।

ॐ ह्रीं श्री तीर्थराज सम्मेदशिखरस्थित श्री कुन्दकुन्दकहाननगरे विराजमान श्री पार्श्वनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

श्री वासुपूज्य भगवान को अर्घ्य

(*'हरिगीतिका'* छंद)

वसुपूज्य के सुत आप हो, वसु कर्म ईंधन दह लिया।
वसु गुण प्रगट कर आपने, वसु भू पति का पद लिया।।
सब सिद्ध सम हैं शोभते, सुर-नर-पशु अरु नारकी।
कीट अन्तः कनक देखा, सत्य तुम ही पारखी।।
भादव चतुर्दशी शुक्ल की, निर्वाण चम्पापुर लिया।
मोक्ष लक्ष्मी पाई प्रभु ने, जयकार इन्द्रों ने किया।।

ॐ ह्रीं श्री तीर्थराज सम्मेदशिखरस्थित श्री कुन्दकुन्दकहाननगरे विराजमान श्री वासुपूज्यजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

श्री सीमंधर भगवान को अर्घ्य

(*'दोहा'* छंद)

निज सीमा को न तजें, सीमंधर भगवान।
विदेह क्षेत्र में राजते, हो अनंत गुणवान।।
कुन्दकुन्द मुनिराज ने, पाया तुमसे ज्ञान।
भरतक्षेत्र को मिल गया, मनवांछित वरदान।।

ॐ ह्रीं श्री तीर्थराज सम्मेदशिखरस्थित श्री कुन्दकुन्दकहाननगरे विराजमान श्री सीमंधरजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

श्री चन्द्रप्रभु भगवान को अर्घ्य

(*'सोरठा'* छंद)

चन्द्रपुरी में जन्म, मात लक्ष्मणा नाथ की।
हर्षित हैं महासेन, तीन लोक प्रमुदित हुए।।

चन्द्र चरण में चिह्न, चन्द्रप्रभ भगवान का।
ललितकूट से सिद्ध, फाल्गुन शुक्ला सप्तमी।।
शीतल चन्द्र समान, गुण अनंत से शोभते।
मैं भी आप समान, जान आज हर्षित हुआ।।

ॐ ह्रीं श्री तीर्थराज सम्मेदशिखरस्थित श्री कुन्दकुन्दकहाननगरे विराजमान श्री चन्द्रप्रभजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

श्री ऋषभदेव भगवान को अर्घ्य

('दोहा' छंद)

मरुदेवि नाभि के सुत, नाम सुखद वृषभेष।
धर्ममार्ग परगट किया, तुम हो प्रथम जिनेश।।
अनादिनाथ को जानकर, हो गये आदिनाथ।
तुम सम शुद्धातम लखूँ, मैं भी बनूँ सनाथ।।
माघ चतुर्दशी कृष्ण की, मुक्त हुए कैलाश।
मैं भी तुम सम बन सकूँ, करता रहूँ प्रयास।।

ॐ ह्रीं श्री तीर्थराज सम्मेदशिखरस्थित श्री कुन्दकुन्दकहाननगरे विराजमान श्री आदिनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

श्री नेमिनाथ भगवान को अर्घ्य

('विजया/कव्वाली' छंद)

जिनने राजुल तजी, पर का राग तजा,
शिवादेवी के सुत, पर अजन्मे थे जो।
गिरनारी चढ़े, उतरे निज आत्म में,
राग किंचित् नहीं, प्यारे सबके थे वो।
शुक्ल आषाढ़ की थी वह शुभ सप्तमी,
जब मुक्ति का उनने वरण था किया।
तीनों लोकों में अद्भुत खुशी छा गई,
धन्य मुक्ति हुई पाकर नेमि पिया।।

है एकत्व ही सुन्दर त्रय लोक में,
पर से संबंध दु:खमय है दिखला दिया।
सच्चे सुख को चाहो तो निजातम भजो,
मेरे नेमि प्रभु ने यह बतला दिया।।

ॐ ह्रीं श्री तीर्थराज सम्मेदशिखरस्थित श्री कुन्दकुन्दकहाननगरे विराजमान श्री नेमिनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

श्री महावीर भगवान को अर्घ्य

('पद्धरि' छंद)

जय त्रिभुवनपति हो महावीर, वर्धमान, सन्मति, अतिवीर।
जय त्रिशलानंदन तुम ही वीर, तुमरे दर्शन से मिटे पीर।।
जय कुण्डलपुर में जन्म लेय, पावापुर तैं विधि क्षय करेय।
कार्तिक की थी अंधियारी रात, कर कर्म नष्ट प्रभु मोक्ष जात।।
प्रभु का शासन है वर्तमान, घोषित करता सब हैं महान।
पूजन करता हूँ प्रभो आज, मिल जाये मुझको मुक्ति राज।।

ॐ ह्रीं श्री तीर्थराज सम्मेदशिखरस्थित श्री कुन्दकुन्दकहाननगरे विराजमान श्री महावीरजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

श्री सम्मेदशिखर से मुक्त हुए तीर्थंकरों के लिए अर्घ्य

('रेखता' छंद)

तीर्थ सम्मेदशिखर है महान, जिसे जाने है सकल जहान।
अनंतों तीर्थंकर भगवान, यहीं से पद पाया निर्वाण।।
अजित, संभव, अभिनंदननाथ, सुमति पद्मप्रभ करें सनाथ।
बताया सबने मुक्तिमार्ग, झुकाऊँ चरणों में मैं माथ।।
सुपारस-चन्द्र-पुष्प वीतराग, हुए हैं सभी स्वयंभूदेव।
शीतल-श्रेय-विमल प्रभु देव, मिटाओ हमरी राग कुटेव।।
अनंत गुण धारक प्रभु अनंत, धर्म ने धर्म कहा वीतराग।
जयति जय शांति-कुंथु-अरनाथ, मुनीसुव्रत के व्रत में पाग।।

जयतिजय नमीनाथभगवान, जयतिजय पार्श्व गुणों की खान।
यही जिन मुक्त हुए हैं बीस, सदा ही होते हैं चौबीस।।
यहीं कुन्दकुन्द नगर में आज, सभी जिनदेव रहे हैं विराज।
अर्घ्य से पूजन करता नाथ, मिले शाश्वत सुखमय आवास।।

ॐ ह्रीं श्री तीर्थराज सम्मेदशिखरस्थित श्री कुन्दकुन्दकहाननगरे विराजमान श्री अजित-संभव-अभिनंदन-सुमति-पद्मप्रभ-सुपार्श्व-चन्द्रप्रभ-पुष्पदंत-शीतल-श्रेयांस-विमल-अनंत-धर्म-शांति-कुंथु-अर-मल्लि-मुनिसुव्रत-नमि-पार्श्वजिनेन्द्रेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मानस्तंभ में विराजमान जिनबिम्बों के लिए अर्घ्य

(तिहारे ध्यान की मूरत...)

महा मनहारी मानस्तंभ, हमारे मान को खोता।
लखे इक बार निज वैभव, उसे सम्यक्त्व है होता।।
जो परद्रव्यों में है अटका, चतुर्गति में वही भटका।
न जाने आत्मवैभव को, वही रोता हुआ फिरता।।
ये मानस्तंभ महिमामय, प्रभु की शक्ति दिखलाता।
प्रभु सम ही मम वैभव, अपरिमित शक्ति बतलाता।।

ॐ ह्रीं श्री तीर्थराज सम्मेदशिखरस्थित श्री कुन्दकुन्दकहाननगरे मानस्तम्भ-स्थित जिनेन्द्रेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

महार्घ्य

('मानव' छंद)

नोकर्म-कर्म यह मैं हूँ, ऐसी बुद्धि है जब तक।
न निज स्वरूप को जाने, अज्ञानी है वह तब तक।।
मैं रागी न हूँ वैरागी, मैं तो बस केवल ज्ञायक।
ऐसी दृष्टि होते ही, बनता है मुक्ति नायक।।
मैं एक-शुद्ध-अनरूपी, बस दर्शन-ज्ञानमयी हूँ।
परमाणुमात्र न किंचित्, मैं तो आनंदमयी हूँ।।

सिद्धों की भूपर आकर, जिनवर स्वरूप है जाना।
मैं भी हूँ सिद्ध स्वरूपी, अपना स्वरूप पहचाना।।
सम्मेदशिखर की भू से, यहाँ अगणित सिद्ध हुए हैं।
विंशति तीर्थंकर कलि में, ही यहीं से मुक्त हुए हैं।।
हो भाव सहित जिनदर्शन, तो होता है निजदर्शन।
सच में निजदर्शन ही तो, कहलाता है जिनदर्शन।।
है महाभाग्य यह मेरा, प्रभु दर्शन पाया तेरा।
पौरुष जागे अब ऐसा, मिट जाये भव का फेरा।।
है चाह नहीं कुछ जग की, बस शिवपथ ही मैं चाहूँ।
जिनवच को कर हृदयंगम, बस निज में ही रम जाऊँ।।

ॐ ह्रीं श्री तीर्थराज सम्मेदशिखरस्थित श्री कुन्दकुन्दकहाननगरे विराजमान समस्तजिनेन्द्रेभ्यो महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

('दोहा' छंद)

तीर्थराज सम्मेद को, वंदन बारम्बार।
निज स्वभाव को जानकर, हो जाओ भवपार।।

('वीर' छंद)

जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में, भारतदेश है अति सुन्दर।
तीर्थराज सम्मेद शिखर जहाँ, भविजन का जो है मनहर।।
शाश्वत सिद्धभूमि कहलाती, शाश्वत सुख की दाता है।
भाव सहित वंदन जो करता, स्वयं सिद्ध हो जाता है।।
महाभाग्य हो जिस भविजन का, वह यहाँ दर्शन पाता है।
धन्य है पौरुष उसी जीव का, जो माने बस ज्ञाता है।।
भूतकाल में जीव अनन्तों, भू पावन कर सिद्ध हुए।
वर्तमान में बीस तीर्थंकर, इसी भूमि से सिद्ध हुए।।

तीर्थराज सम्मेदशिखर का, कण–कण अति ही पावन है।
कुन्दकुन्द कहान नगर की, रचना अति मनभावन है।।
भूतल पर स्वाध्याय भवन है, मोहतिमिर के नाशन को।
मंदिर में जिनबिम्ब विराजे, आतम तत्त्व प्रकाशन को।।
यहाँ विराजित सभी जिनेश्वर, बतलाते आतम महिमा।
तीन लोक में सबसे सुन्दर, गाते गणधर हैं गरिमा।।
भाव शुभाशुभ होते रहते, आतम रहता भिन्न सदा।
दर्पणवत् प्रतिबिम्ब झलकते, होय प्रभावित नहीं कदा।।
पर्यायों अरु गुणभेदों से, जो न कभी खण्डित होता।
नय–प्रमाण से कथन भले हों, भेदरूप जो न होता।।
है अनन्तगुण पिण्ड आत्मा, निज शक्ति का पार नहीं।
निज शक्ति को जो पहचाने, उसका रहता संसार नहीं।।
शाश्वत सिद्धभूमि पर आकर, हम अपना वैभव जाने।
शाश्वत शुद्ध चिदातम लखकर, मैं ज्ञायक हूँ बस माने।।
निज आतम ही ध्रुवधाम है, निज आतम ही शाश्वतधाम।
मंगलायतन, सिद्धायतन मैं हूँ, और सहस्रों मेरे नाम।।
जिनवर की पूजन करके मैं, बस जिनवर बनना चाहूँ।
चाह दाह का शमन करूँ अरु, लौट न फिर भव में आऊँ।।

ॐ ह्रीं श्री तीर्थराज सम्मेदशिखरस्थित श्री कुन्दकुन्दकहाननगरे विराजमान समस्तजिनेन्द्रेभ्यो जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

तीर्थराज सम्मेदशिखर अरु भगवंतों की कर पूजा।
पूजन का फल यही चाहता, न भव धारूँ अब दूजा।।
जाने या अनजाने में भी, जो भी भूल हुई जिनदेव।
क्षमा करो प्रभु भूल हमारी, मेटो प्रभुवर राग कुटेव।।

पुष्पांजलिं क्षिपामि

मंगल शान्ति विधान

मांगलिक

('मानव' छंद)

इस भव अटवी में भ्रमते, दुख पाए हैं चहुँगति में।
पाई ना इक क्षण साता, सुर-नर-नारक-पशु तन में।।

अब सोया भाग्य जगा है, जो जिनवर दर्श मिला है।
मानों मरुथल में प्रभुवर, इक सुरभित कमल खिला है।।

तन में अपनापन करके, मैं निज स्वरूप ना जाना।
अब तव दर्शन से स्वामी, पाऊँ सुख जो अनजाना।।

नवदेव मिले मंगलमय, आतम शांति पाने को।
विषयों की तज अभिलाषा, चाहूँ निज में रमने को।।

मैं मिथ्या मति को त्यागूँ, नव देवों से चित पागूँ।
मंगल सुख शांति पाऊँ, अब निज स्वरूप में जागूँ।।

मैं सुर पदवी ना चाहूँ, ना विषयों की अभिलाषा।
परिजन-पुरजन अरु धन पद, की भी नहीं मन में आशा।।

अरिहंत-सिद्ध अरु सूरि, पाठक-मुनिवर-जिन मंदिर।
जिन प्रतिमा-जिन वच पूजूँ, जिनधर्म बसे मम अंतर।।

('दोहा' छंद)

नव देवों को पूजकर, निज स्वरूप पहचान।
मंगल-शांति विधान कर, कर निज का कल्याण।।

।। पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत् ।।

परम पूज्य नवदेव पूजन

स्थापना

('वीर' छंद)

वीतराग-सर्वज्ञ-हितंकर, अर्हत प्रभु को है वंदन।
अष्ट कर्म विरहित सिद्धों का, करता हूँ मैं अभिनंदन।।
गुण छत्तीस सहित आचारज, के चरणों में करूँ नमन।
उपाध्याय जिनध्वनि के ज्ञाता, निर्मल जिनका मन-वच-तन।।
निज स्वरूप को साधें मुनिवर, समता रस नित बरसाते।
जिन मंदिर-जिन प्रतिमा को लख, सुर-नर-मुनि गण हरषाते।।
शुद्ध स्वरूप कहे जिनवाणी, वीतरागता की पोषक।
निज स्वभाव महिमा बतलाती, मिथ्यामल की है शोषक।।
वस्तु स्वभाव 'धर्म' कहलाता, धर्म 'अहिंसा' अरु 'वीतराग'।
निज अनुभूति परम धर्म है, निज को निज में ही अब पाग।।
परम पूज्य नव देव हमारे, मंगल-शांति प्रदाता हैं।
वे नवदेव बसें अंतर में, चतुर्गति दुख त्राता हैं।।

ॐ ह्रीं श्री अर्हत्-सिद्ध-आचार्य-उपाध्याय-साधु-जिनमंदिर-जिन प्रतिमा- जिनवाणी-जिनधर्म नवदेवाः अत्र अवतरत अवतरत संवौषट्, अत्र तिष्ठत तिष्ठत ठःठः, अत्र मम सन्निहिताः भवत भवत वषट्।

कहीं अज्ञ यह कामिनी रति को, भव-वन में भागा फिरता।
कहीं अर्थ संरक्षण हेतु, दुखमय आकुलता करता।।
कोई भविक विज्ञ पंडित है, जो जिन पथ पर है चलता।
निज आतम में रमण करे, अरु मुक्ति रमा को है वरता।।

विशेष – अष्टकों में नियमसार के कलशों को आधार बनाया गया है।

नव देवों को जल अर्पित कर, जन्म-मरण का नाश करूँ।
सब सुखदायक, भवभय नाशक, मंगल-शांति विधान करूँ।।

ॐ ह्रीं श्री नवदेवेभ्यो जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

समयसार इक सार तत्त्व अरु, मोह वृक्ष को प्रबल कुठार।
काम-क्रोध नाशक है जग में, शुद्ध बोध का है अवतार।।
समयसार का आश्रय लेकर, समयसार मय हो जाऊँ।
सहज ज्ञान-आनंद प्राप्त कर, लौट न फिर भव में आऊँ।।
नव देवों को अर्पित चंदन, भवाताप का नाश करूँ।
सब सुखदायक, भवभय नाशक मंगल-शांति विधान करूँ।।

ॐ ह्रीं श्री नवदेवेभ्यो संसारतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

गुण-पर्यय युत सभी जीव हैं, स्व चतुष्ट से सभी समान।
त्रिविध कर्म से रहित सदा हैं, सिद्धों सम ही वैभव जान।।
जन्म-जरा अरु मरण रहित हैं, अष्ट गुणों से हैं संयुक्त।
सुधी-कुधी किस नय से जानूँ, त्यों संसारी ज्यों है मुक्त।।
नव देवों को अक्षत अर्पित, अक्षय पद को प्राप्त करूँ।
सब सुखदायक, भवभय नाशक मंगल-शांति विधान करूँ।।

ॐ ह्रीं श्री नवदेवेभ्यो अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा

जन्म-मरण के जनक कहे हैं, दोषों सहित सकल आचार।
पर-लक्ष्यी जो क्रियाकांड है, त्याज्य कहा यह बाह्याचार।।
सहज ज्ञान-दर्शन अरु सुखमय, निज आतम में करो विहार।
ज्ञाता-दृष्टा साक्षी रहकर, संयोगज सब तजो विकार।।
नव देवों को पुष्प समर्पित, कामभाव का नाश करूँ।
सब सुखदायक, भवभय नाशक, मंगल-शांति विधान करूँ।।

ॐ ह्रीं श्री नवदेवेभ्यो कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

पाप भाव तो दुखमय ही हैं, पुण्य 'कल्पना' में रमणीय।
भव के मूल शुभाशुभ ही हैं, अतः विज्ञ जानों त्यजनीय।।
आत्मज्ञान अरु आत्मध्यान ही, है निश्चय से इक कर्तव्य।
परमानंद समयपूरित निज, परम सत्य है आश्रय योग्य।।
नव देवों को चरु चढ़ाऊँ, क्षुधा रोग का नाश करूँ।
सब सुखदायक, भवभय नाशक, मंगल-शांति विधान करूँ।।
ॐ ह्रीं श्री नवदेवेभ्यो क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा
जीव अकेला चतुर्गति में, जन्म-मरण के दुख भोगे।
यश-अपयश अरु लाभ-हानि भी, जीव अकेला ही भोगे।।
एकाकी ही कर्मोदय से, चतुर्गति में है भ्रमता।
सत् गुरु से उपदेश प्राप्त कर, निजानंद में है रमता।।
नव देवों को दीप समर्पित, मोह महातम नाश करूँ।
सब सुखदायक, भवभय नाशक, मंगल-शांति विधान करूँ।।
ॐ ह्रीं श्री नवदेवेभ्यो मोहांधकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।
एक-शुद्ध-चैतन्य आत्मा, ज्ञान-दर्श से हूँ परिपूर्ण।
मैं इक शाश्वत शुद्धातम हूँ, त्रिविध कर्म को कर दूँ चूर्ण।।
मैं अनंत गुण-शक्ति युक्त हूँ, बाह्य भाव से लाभ नहीं।
निज वैभव को जब से देखा, जड़ वैभव की चाह नहीं।।
नव देवों को धूप चढ़ाऊँ, अष्ट कर्म विध्वंस करूँ।
सब सुखदायक, भवभय नाशक, मंगल-शांति विधान करूँ।।
ॐ ह्रीं श्री नवदेवेभ्यो अष्टकर्म विध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।
पुण्य पाप में अंतर करके, अज्ञ पुण्य में रमता है।
पुण्य-पाप दोनों भव हेतु, विज्ञ समझ कर तजता है।।
नित्यानंदी सहज ज्ञानमय, जीव तत्त्व जो प्राप्त करे।
करे विहार सहज चेतन में, तीन लोक का पूज्य बने।।

नव देवों को फल अर्पित कर, मोक्ष महाफल प्राप्त करूँ।
सब सुखदायक, भवभय नाशक, मंगल-शांति विधान करूँ।।

ॐ ह्रीं श्री नवदेवेभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

नाना भेद सहित जीवों से, भरा हुआ है यह संसार।
नाना गति हैं नाना जाति, बुद्धि-लब्धि भी विविध प्रकार।।
समझाने से कोई न समझे, सब समझें निज मति अनुसार।
अतः विवाद करो मत भाई, नहीं किसी की जीत ना हार।।
नव देवों को अर्घ्य समर्पित, पद अनर्घ्य को प्राप्त करूँ।
सब सुखदायक, भवभय नाशक, मंगल-शांति विधान करूँ।।

ॐ ह्रीं श्री नवदेवेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

भावना

भव समुद्र में भ्रमते-भ्रमते, मानव तन मैंने पाया।
महाभाग्य मेरा जागा जो, जिनवर दर्शन को आया।।
परद्रव्यों की प्रीति से ही, भव-भव में दुख पाए हैं।
त्रस-थावर गतियों में भ्रमते, आज यहाँ तक आए हैं।।
परद्रव्यों का ज्ञायक माना, निज आतम तो रहा अगम्य।
जिनवचनों से अब यह जाना, शुद्धातम त्रिभुवन में रम्य।।
ममता जब निज की आ जाए, मिल जाए तब निजपद राज।
आतम हित में रहूँ समर्पित, अन्य रहे ना कोई काज।।
अगम आत्मा में हो निष्ठा, सुख समुद्र में होए प्रवेश।
कर्म पाश से रहित विपाशा, आकुलता का जहाँ न लेश।।

।। पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत् ।।

विष-विषधर, वन-अनल संग, रहना हितकर होय।
पर जिनधर्म परांगमुख, संग न रहना कोय।।

अरहन्त परमेष्ठी के लिए अर्घ्य

('दोहा' छंद)

गृहस्थ अवस्था त्याग कर, धरा दिगंबर वेश।
निज स्वभाव साधन लिया, मिटे अनादि क्लेश।।
स्व चतुष्टय में आय कर, अनंत चतुष्टय पाय।
निजानंद में लीन रह, त्रिभुवन पति कहलाय।।

('चौपाई' छंद)

दोष अठारह सब ही नाशे, सप्त तत्त्व षट् द्रव्य प्रकाशे।।
ऋषभ-अजित-संभव जिन स्वामी, अभिनंदन-सुमति प्रभु नामी।।
पद्म-सुपार्श्व-चन्द्रप्रभ जिनवर, पुष्पदंत-शीतल-श्रेयस्कर।।
वासुपूज्य अरु विमल-अनंत, धर्म-शांति-कुंथु अर भगवंत।।
मल्लिनाथ-मुनिसुव्रत स्वामी, नमि-नेमि प्रभु हैं जगनामी।।
पार्श्वनाथ सब जीव हितंकर, महावीर प्रभु हैं क्षेमंकर।।
ऋषभादिक चौबीस जिनेश्वर, परम शांतिमय हैं परमेश्वर।।
भरतैरावत चौबिस होते, ज्ञान प्रभा मिथ्यातम खोते।।
बीस जिनेश्वर हैं विदेह में, देह रहित पर रहें देह में।।
एक शतक सत्तर तीर्थंकर, हो सकते इक संग अभयंकर।।
उन सम ही निज वैभव मेरा, निज अनुभव से होय सबेरा।।
तीन काल के सब अरहंत, अनुपम अद्भुत महिमा वंत।।
महा पुण्य अवसर यह आया, अर्हत छवि लख मन हर्षाया।।
अष्ट द्रव्यमय अर्घ्य चढ़ाऊँ, मैं भी निर-आकुल सुख पाऊँ।।

ॐ ह्रीं श्री अनंतभवार्णवभयनिवारकानन्तगुणस्तुताय अर्हते अर्घ्यं निर्व-पामीति स्वाहा।

सिद्ध परमेष्ठी के लिए अर्घ्य

('वीर' छंद)

निज पद के आराधन से ही, अशरीरी पद पाया है।
जो अनादि से व्यक्त नहीं था, निज स्वरूप प्रगटाया है।।
निर्मलता सब गुण में आई, ध्रुव-अनुपम गति पाई है।
गमनागमन मिटा चहुँगति का, अतः अचलता आई है।।
निकट भव्य तव गुण को गाकर, निज गुण को हैं पा जाते।
सिद्धों के पथ पर चलकर के, स्वयं सिद्ध वे हो जाते।।
ज्यों दिनकर के सहज योग से, पंकज श्री है खिल जाती।
त्यों तव गुणनिधि के चिंतन से, निजनिधि मुझको मिल जाती।।
आप रहें आदर्श सदा ही, सविनय शीश झुकाता हूँ।
सिद्धों के पावन चरणों में, सादर अर्घ्य चढ़ाता हूँ।।

ॐ ह्रीं श्री अष्टकर्मविनाशक-निजात्मतत्त्वविभासक-सिद्धपरमेष्ठिने अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

आचार्य परमेष्ठी के लिए अर्घ्य

('दोहा' छंद)

छत्तिस गुण व्यवहार हैं, निज अनुभव परमार्थ।
परहित तो उपलक्ष्य है, निजहित है सत्यार्थ।।
ढाई द्वीप में जो हुए, हैं अरु आगे होंय।
सब सूरिश्वर को नमन, भविजन के मल खोंय।।

('हरिगीतिका' छंद)

तप तपें द्वादश, धरें दश वृष, निरत पंचाचार हैं।
षडावश्यक, गुप्ति त्रय धर, करें नित उपकार हैं।।
निज आत्मा का ध्यान धरते, संघ संचालन करें।
दीक्षित करें भुवि भव्यजन, कर्तृत्व बुधी निज परि हरें।।

बहु ग्रंथ रचना कर सहज, हम पर किया उपकार है।
अर्घ्य अर्पित कर चरण में, वंदना शतवार है।।

ॐ ह्रीं श्री अनवद्यविद्याविद्योतनाय आचार्यपरमेष्ठिने अर्घ्यं निर्व. स्वाहा।

उपाध्याय परमेष्ठी के लिए अर्घ्य

('सवैया' छंद)

ग्यारह अंग लखें इक क्षण में,
चौदह पूर्व के हैं जो ज्ञाता।
परद्रव्यों का ज्ञान भले हो,
पर निज आतम से ही नाता।।
पढ़ें पढ़ावें पाठक सब ही,
बस शुद्धातम ही मन भाता।
पथ उनके चल शिव सुख पाऊँ,
सादर सविनय अर्घ्य चढ़ाता।।

ॐ ह्रीं श्री द्वादशांगपरिपूरणश्रुतपाठनोद्यतबुद्धिविभवोपाध्याय-परमेष्ठिभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

साधु परमेष्ठी के लिए अर्घ्य

('दोहा' छंद)

चहुँगति के दुख से डरे, शिव-सुख से अनुराग।
विषय-कषायनि त्याग कर, छोड़ा द्वेष अरु राग।।
चौबिस परिग्रह त्याग कर, निज में किया निवास।
निज वैभव पाया मुनि, फिर क्यों पर की आश।।

('रेखता' छंद)

धरा जब नग्न दिगम्बर वेश, महाव्रत-समिति हिय में धार।
पंच इंद्रिय पर पाई जय, धरें षट् आवश्यक सुखकार।।

सात गुण शेष धरें मुनिराज, करें षट् कायनि पर उपकार।
प्रचुर स्व संवेदन है मुख्य, यही है निश्चय अरु व्यवहार।।
रहें नित आतम में लवलीन, नहीं जिनको पर की परवाह।
न परिषह-उपसर्गों का भय, नहीं किंचित् पद-यश की चाह।।
रहें सप्तम-षष्ठम गुणथान, मिला निज वैभव का है राज।
अर्घ्य से पूजन करता आज, बनूँ मैं भी ऐसा मुनिराज।।

ॐ ह्रीं श्री घोरतपोऽभिसंस्कृतध्यानस्वाध्यायनिरत-साधुपरमेष्ठिभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अकृत्रिम-कृत्रिम जिनमंदिरों के लिए अर्घ्य

(तर्ज - तिहारे ध्यान की मूरत)

है शाश्वत लोक की रचना, कोई कर्ता नहीं धर्ता।
रहें षट् द्रव्य इस जग में, नहीं कोई जिन्हें हर्ता।।
लोक त्रय में विभाजित जो, ऊर्ध्व-मध्य-अधो लोक।
हैं जिन ग्रह शोभते जहँ पर, हरें भव्यों का जो शोक।।
असंख्य जिन भवन शाश्वत, जो निज शाश्वत सुख दर्शाते।
है सिद्धों सम ही मम वैभव, ये मंदिर ही हैं बतलाते।।
हैं कृत्रिम जिन भवन जग में, भविकजन ने किए निर्मित।
जिनालय तो हैं शिक्षालय, सभी को अर्घ्य है अर्पित।।

ॐ ह्रीं श्री अष्टकोटिषट्पंचाशल्लक्षसप्तनवतिसहस्रचतुःशतएकाशीति-संख्याकृत्रिमजिनालयेभ्यः कृत्रिमजिनालयेभ्यश्च अर्घ्यं निर्व. स्वाहा।

अकृत्रिम-कृत्रिम जिन प्रतिमाओं के लिए अर्घ्य

(तर्ज - मेरे मन मंदिर में आन)

लखो जिन मंदिर में भवि आन, विराजे वीतराग भगवान।
विराजे वीतराग भगवान, निहारें निज निधि अतुल महान।।टेक।।

तीन लोक है अद्भुत सुंदर, वीतराग प्रभु की छवि मनहर।
प्रभु दर्शन से हो कल्याण, विराजे वीतराग भगवान।।
कृत्रिम और अकृत्रिम प्रतिमा, जिन शासन की इनसे गरिमा।
करातीं निज वैभव का ज्ञान, विराजे वीतराग भगवान।।
अंतर्मुख मुद्रा से शोभित, मोह भाव हो जाए तिरोहित।
करायें स्व-पर भेद विज्ञान, विराजे वीतराग भगवान।।
जिनदर्शन कर भविजन हर्षित, जिनबिंबों को अर्घ्य समर्पित।
लखो सब प्रतिमा में प्रतिमान, विराजे वीतराग भगवान।।

ॐ ह्रीं श्री नवशतपंचविंशतिकोटित्रिपंचाशल्लक्षसप्तविंशतिसहस्त्र-नवशताष्टचत्त्वारिंशत्प्रमिताकृत्रिमजिनबिम्बेभ्यः कृत्रिमजिन-बिम्बेभ्यश्च अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जिनवाणी के लिए अर्घ्य

('दोहा' छंद)

राग-द्वेष विरहित प्रभो, पायो केवलज्ञान।
देकर हित उपदेश वर, किया जगत कल्याण।।

('वीर' छंद)

अनेकांतमय वस्तुव्यवस्था, जिनवाणी बतलाती है।
नय-प्रमाण से सब द्रव्यों का, सत्य स्वरूप दिखाती है।।
जिनवाणी अभ्यास बिना मैं, वस्तुस्वरूप ना पहचाना।
निज-पर, भक्ष्य-अभक्ष्य, हिताहित, को भी अबतक ना जाना।।
अज्ञ दशा में रहकर मैंने, चतुर्गति में दुख पाया।
विषयों का मैं बना भिखारी, निज वैभव को बिसराया।।
पुण्य उदय मेरा आया है, नर तन-जिन श्रुत भी पाया।
हुई विशुद्धि और क्षयोपशम, जिनवच सुनने को आया।।

मल को गाले-सुख को लावे, मंगलमय प्रभु की वाणी।
आकुलता को दूर भगावे, शांति प्रदाता जिनवाणी।।
कलिकाल में जिन वच ना हो, तो घनघोर अंधेरा है।
पढ़ो-सुनो-समझो जिनवाणी, होगा तभी सवेरा है।।
स्याद्वादमय जिनवचनामृत, पियो-पिलाओ हे भविजन।
जिन वचनामृत पान किए बिन, नहीं मिटेगा भव क्रन्दन।।
स्व-परप्रकाशक, भव-भयनाशक, जिनवाणी का करूँ मनन।
जिनवाणी को अर्घ्य चढ़ाकर, सादर सविनय करूँ नमन।।

ॐ ह्रीं श्री स्याद्वादांकितजिनागमायाऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जिनधर्म के लिए अर्घ्य

('चौपाई' छंद)

चहुँगति के जो दुःख नशावे, जन्म-मरण का भय विनशावे।
उत्तम-अविनाशी सुख लावे, शिव सुख को जो है प्रकटावे।।
जो सर्वज्ञ प्ररूपित होता, भविजन के जो कल्मष धोता।
वह ही तो जिनधर्म कहावे, कर्मनाश शिवपुर पहुँचावे।।
सब अर्हंतों ने समझाया, अनेकांतमय धर्म बताया।
वस्तु स्वभाव भी धर्म कहा है, रत्नत्रय भी धर्म महा है।।
सोलह कारण मंगलकारी, दशलक्षण भी हैं सुखकारी।
वीतरागता भव दुखहारी, धर्म एक यह शिव सुखकारी।।
है अभेद इक धर्म बताया, जिसे भेद करके समझाया।
नय निश्चय-व्यवहार बताया, भेदाभेद स्वरूप लखाया।।
प्रमुदित होओ हे भवि प्राणी, धर्म मिला है शिव सुखदानी।
है जिन धर्म महा मंगलमय, अर्घ्य चढ़ाकर होऊँ निर्भय।।

ॐ ह्रीं श्री दशलक्षणोत्तमक्षमादि-त्रिलक्षणसम्यग्दर्शनज्ञानचारित्ररूप-मुनिगृहस्थाचारभेदेन द्विविधदयारूपत्वेनैकरूपजिनधर्मायऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

विनयांजलि

(तर्ज- जिया कब तक उलझेगा संकल्प विकल्पों में।)

चहुँगति की गलियों में, प्रभु कब से भटक रहा।
जग की रंग रलियों में, निज निधि को भूल रहा।।

मैं काल अनंत अरे, पशु गति में रह आया।
वध-बंधन-छेदन के, बहु दुख मैं सह आया।।
मैं भार वहन करते, अकथित दुःख पाये हैं।
सबलों ने मारा मुझे, बहु कष्ट उठाये हैं।।
छल कर करके मैंने, बस अब तक कष्ट सहा।। चहुँगति।।

आकुलता में मरकर, मैं नरक गति जन्मा।
भू के स्पर्शन से, मैं प्रभु बहुविध तड़फा।।
जहाँ भूख-प्यास भारी, शीतोष्ण भयंकर है।
देखूँ मैं चहुं दिशि में, नहीं कोई हितंकर है।।
हर क्षण बस चिल्लाऊँ, दुख नाहीं जाये सहा।। चहुँगति।।

जब नरतन को धारा, गर्भादिक दुख सहे।
जन्में जब इस भू पर, तब अगणित कष्ट लहे।।
धन-पद-यश की चाहत, बस आकुलता मय है।
कर्मोदय में भूला, निज निधि जो सुखमय है।।
दुख पाये जीवन भर, मुझसे न जाये कहा।। चहुँगति।।

सुर गति में भोगों की, मदिरा पी मस्त रहा।
विषयों की तृष्णा में, हे प्रभु मैं त्रस्त रहा।।
निज-पर के ज्ञान बिना, सुर वैभव दुखमय है।
वह सुख न कभी पाता, जो तन में तन्मय है।।
मैं मोह सहित रहकर, सुर गति में दुख लहा।। चहुँगति।।

अब तक जीवन बीता, मिथ्यात्व अंधेरे में।
तन-धन को निज माना, संसार के फेरे में।।
जिनवर-जिनश्रुत-जिनगुरु, से अब तक दूर रहा।
मिथ्या पथ पर चलकर ही, अब तक कष्ट सहा।।
नव देव मिले अब तो, दु:खों का अंत अहा।। चहुँगति।।

मंगलमय धर्म मिला, मंगल-शांति पाने।
जिनवर के पंथ चलूँ, खुद जिनवर बन जाने।।
त्रिभुवन में इक सुन्दर, परिपूर्ण रूप मेरा।
जिनसम निज रूप लखो, मिटे गतियों का फेरा।।
मैं परम पारिणामिक, स्वयमेव ही देव अहा।
मैं तो अनंत सुखमय, जिनदेव ने सदा कहा।।

।। पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत् ।।

महार्घ्य

('रोला' छंद)

मिथ्या दर्शन ज्ञान-चरण वश, बहु दुख पाया।
हित उपदेशक मिला न कोई, मैं भरमाया।।
स्व-पर, पूज्यापूज्य, हिताहित का विवेक ना।
सप्त तत्त्व षट् द्रव्यादिक का ज्ञान हुआ ना।।
राग-द्वेष मय देव-देवियाँ पूजी मैंने।
राशि-ग्रह-नक्षत्र-दिशायें पूजी मैंने।।
पर्वत-नदी तराजू-तिजोरी रहा पूजता।
चमत्कार को नमस्कार कर रहा घूमता।।
महा भाग्य से नव देवों का संग मिला जब
सुख-दुख कर्ता मान उन्हीं की शरण रहा तब।

वीतराग नव देव सभी हैं यह न माना।
सुख पथ दर्शक के समक्ष दुख पाये नाना।।
नव देवों से विषय भोग की मन्नत मांगी।
वीतराग निर्दोष प्रभु को माना रागी।।
महाभाग्य शुभ अवसर में जिनवच है पाया।
ज्ञान सूर्य का उदय होय यह अवसर आया।।
हैं नव देव पूज्य जग में शिवपथ बतलाते।
उनके पथ पर चलकर मंगल शांति पाते।।
मंगल-शांति विधान करूँ मैं आनंदकारी।
महा अर्घ्य अर्पित कर पद पाऊँ अविकारी।।

ॐ ह्रीं श्री अरहन्त-सिद्ध-आचार्य-उपाध्याय-साधु-जिनमंदिर-जिन प्रतिमा-जिनवाणी-जिनधर्म-नवदेवेभ्योऽनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि. स्वाहा।

जयमाला

('वीर' छंद)

पंच परम पद, जिन मंदिर, जिनबिम्ब धर्म अरु जिनवाणी।
मंगल-शांति प्रदायक जग में, नमन करें सब भवि प्राणी।।
वीतराग अरहन्त प्रभु ने, शुद्धातम बतलाया है।
नग्न दिगम्बर सन्तों ने भी, अनुभव कर दिखलाया है।।
वीतराग जिनवर की वाणी, वस्तु स्वरूप बताती है।
तीन लोक में सबसे सुंदर, समयसार दिखलाती है।।
जिनवर दर्शन करके जाना, मेरा भी है जिन सम रूप।
शुद्ध बुद्ध कारण परमातम, मैं तो हूँ चैतन्य स्वरूप।।
रंग-राग सब ही दिखते हैं, पर मैं इनसे भिन्न अरे।
देही-रागी, मान-मानकर, अब तक तो हम जिये मरे।।
अरस-अरूपी-अस्पर्शी हूँ, गंध-शब्द से रहित सदा।
बाल-युवा अरु तरुण नहीं हूँ, नर-नारी भी नहीं कदा।।

मैं निर्दण्ड सदा निर्मल हूँ, निर्मम अरु निष्कर्म स्वरूप।
कर्ता-धर्ता नहीं किसी का, ज्ञाता मात्र सदा मम रूप।।
ज्ञान रूप दर्पण में मेरे, जड़-चैतन्य झलकते हैं।
मैं मुझमें, पर पर में रहता, वे न मुझमें महकते हैं।।
लोकोत्तम अरु शरणभूत है, नित्य त्रिकाली ध्रुव आतम।
मंगलकारी शांति विधायक, सहज शुद्ध निज परमातम।।
'मंगल-शांति' विधान किया है, मंगल-शांति पाने को।
जिनवर को लख मन मचले है, शाश्वत सुख के पाने को।।

ॐ ह्रीं श्री अर्हत्-सिद्ध-आचार्य-उपाध्याय-साधु-जिनमंदिर-जिन प्रतिमा-जिनवाणी-जिनधर्म नवदेवेभ्यो जयमाला पूर्णार्घ्यं नि. स्वाहा।

पुण्योदय से नरतन पाया, महाभाग्य जिनधर्म मिला।
जिनवर-जिनश्रुत-जिनगुरु पाकर, मुरझाया मन सुमन खिला।।
मंगल-शांति विधान किया अब, निर्भय होकर बिचरूँगा।
करूँ समर्पण निज का निज में, लौट न भव में आऊंगा।।

।। पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्।।

परम पुनीत पर्व...

परम पुनीत पर्व यह पावन, भव्यों को लगता मनभावन।
विषय-कषाय की जलती ज्वाला, चेतन को करती जो काला।।
दशलक्षण हैं शीतल नीर, भव-भव की हर लेते पीर।
निज को जान क्रोध को भूलो, मत संयोगों में तुम फूलो।।
छल-कपट अरु लोभ को छोड़ो, झूठ-असंयम से मुख मोड़ो।
द्वादश तप में चित को पागो, राग-द्वेष अरु मोह को त्यागो।।
तीन लोक में कुछ नहीं मेरा, अब करना चैतन्य बसेरा।
वीतराग परिणति दस नाम, राग द्वेष का अब क्या काम।
भादव भव्यों को सावन-सम, परम पुनीत पर्व यह अनुपम।।

अर्घ्यावली

आदिनाथ भगवान का अर्घ्य

('चौपाई' छंद)

(1) निज अनादि वैभव प्रकटाया, हैं स्वतंत्र सब ही समझाया।
विश्व अनादि-अनंत बताया, सिद्धों सम मम वैभव गाया।।
नाभिनंदन ऋषभ जिनेशा, चरणों में नत रहें सुरेशा।
तव पथ पर जो चलें हमेशा, मिट जायें भव-भव के क्लेशा।।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

('हरिगीतिका+दोहा' छंद)

(2) चैतन्य चिन्तामणि स्वयं मैं, शक्तियाँ भरपूर हैं।
सर्वार्थसिद्धि हो स्वयं से, कष्ट होते दूर हैं।।
अन्य परिग्रह क्या करे जब, जीव ही सुखकार है।
निज रूप दिखलाया ऋषभ ने, वंदना शत बार है।।
चेतन चिंतामणि रतन, अनुपम अमित अनर्घ्य।
श्री ऋषभेश जिनेश के, चरण चढ़ाऊँ अर्घ्य।।9।।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

('दोहा' छंद)

(3) मरुदेवि नाभि के सुत, नाम सुखद वृषभेष।
धर्ममार्ग परगट किया, तुम हो प्रथम जिनेश।।
अनादिनाथ को जानकर, हो गये आदिनाथ।
तुम सम शुद्धातम लखूँ, मैं भी बनूँ सनाथ।।
माघ चतुर्दशी कृष्ण की, मुक्त हुए कैलाश।
मैं भी तुम सम बन सकूँ, करता रहूँ प्रयास।।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अजितनाथ भगवान का अर्घ्य

('दोहा' छंद)

सहज ज्ञानमय आत्मा, है अनंत गुणखान।
निर्मल निर्मम शुद्ध है, है त्रिकाल निर्मान।।
अनुभव कर रिपु जीतियो, अजितनाथ भगवान।
अर्घ्य चढ़ा पूजन करूँ, बनू मैं आप समान।।

ॐ ह्रीं श्री अजितनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

संभवनाथ भगवान का अर्घ्य

('वीर' छंद)

समभावी भावों से भगवन्, संभव कार्य सभी होते।
शुद्धातम के अवलंबन से, त्रिविध कर्म मल को धोते।।
संभवनाथ के पद पंकज में, सादर अर्घ्य चढ़ाता हूँ।
मुक्ति पद संभव हो स्वामी, यही भावना भाता हूँ।।

ॐ ह्रीं श्री संभवनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अभिनंदननाथ भगवान का अर्घ्य

('चौपाई' छंद)

शुद्धातम सुख रूप बताया, मोह-राग दुख रूप दिखाया।
आतम अनुपम और त्रिकाली, है अनंत गुण वैभवशाली।।
वंदन है अभिनंदन स्वामी, निज वंदन कर हो जगनामी।
अर्घ्य समर्पित करता स्वामी, मैं पथ पाऊँ प्रभु शिवधामी।।

ॐ ह्रीं श्री अभिनंदननाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सुमतिनाथ भगवान का अर्घ्य

('अवतार' छंद)

मिथ्यामति से हे नाथ, भववन में भटका।
मैं निज स्वरूप को भूल, विषयों में अटका।।
हे सुमतिनाथ भगवान! सुमति प्रदान करो।
मैं अर्घ्य चढ़ाऊँ नाथ, भव बाधा हर लो।।

ॐ ह्रीं श्री सुमतिनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्व. स्वाहा।

पद्मप्रभ भगवान का अर्घ्य

('वीर' छंद)

पद्म कांतिमय पद्मप्रभ हैं, पद्म चिह्न से जो शोभित।
जो निज पर ही मोहित रहते, सारा जग उन पर मोहित।।
जल से भिन्न पद्म रहता है, त्यों तुम जड़ कर्मों से भिन्न।
हैं अनंत गुण पर्यायें प्रभु, उनसे रहते सदा अभिन्न।।

ॐ ह्रीं श्री पद्मप्रभजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सुपार्श्वनाथ भगवान का अर्घ्य

('वीर' छंद)

वीतराग सर्वज्ञ जिनेश्वर, के सुपार्श्व में नित्य रहूँ।
श्री जिनगुण महिमा को तजकर, अन्य भक्ति न कभी करूँ।।
श्री सुपार्श्व के चरण कमल में, गुणमय अर्घ्य चढ़ाता हूँ।
पद अनर्घ्य मिल जाए स्वामी, सादर शीश नवाता हूँ।।

ॐ ह्रीं श्री सुपार्श्वनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्व. स्वाहा।

श्री चन्द्रप्रभु भगवान को अर्घ्य

('सोरठा' छंद)

चन्द्रपुरी में जन्म, मात लक्ष्मणा नाथ की।
हर्षित हैं महासेन, तीन लोक प्रमुदित हुए।।

चन्द्र चरण में चिह्न, चन्द्रप्रभ भगवान का।
ललितकूट से सिद्ध, फाल्गुन शुक्ला सप्तमी।।
शीतल चन्द्र समान, गुण अनंत से शोभते।
मैं भी आप समान, जान आज हर्षित हुआ।।

ॐ ह्रीं श्री चन्द्रप्रभजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पुष्पदंत भगवान का अर्घ्य

('सोरठा' छंद)

त्रिविध कर्म को जीत, सुखमय निज पद पा लिया।
सुविधिनाथ भगवान, शिव मग को दर्शा दिया।।
अष्टद्रव्यमय अर्घ्य, करूँ समर्पित चरण में।
गुण अनंतमय पुष्प, विकसित हों मम हृदय में।।

ॐ ह्रीं श्री पुष्पदंतजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शीतलनाथ भगवान का अर्घ्य

('वीर' छंद)

भवाताप में झुलस रहा हूँ, शीतल प्रभु शीतलता दो।
मिथ्यामल से मलिन परिणति, को प्रभुवर निर्मल कर दो।।
अष्ट कर्म को नष्ट करूँ अरु, अष्टम वसुधा को पाऊँ।
अष्टद्रव्यमय अर्घ्य समर्पित, निज अनर्घ्य वैभव पाऊँ।।

ॐ ह्रीं श्री शीतलनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्व. स्वाहा।

श्रेयांसनाथ भगवान का अर्घ्य

('अवतार' छंद)

श्रेयांशनाथ भगवान, मम उर में आओ।
मैं नाशूँ दुर्जय मोह, शिव पथ दरशाओ।
शुद्धातम श्रेय स्वरूप, प्रभु ने दर्शाया।
मैं अर्घ्य चढ़ाऊँ नाथ, मम उर हर्षाया।।

ॐ ह्रीं श्री श्रेयांसनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्व. स्वाहा।

श्री वासुपूज्य भगवान को अर्घ्य

('हरिगीतिका' छंद)

वसुपूज्य के सुत आप हो, वसु कर्म ईंधन दह लिया।
वसु गुण प्रगट कर आपने, वसु भूपति का पद लिया।।
सब सिद्ध सम हैं शोभते, सुर-नर-पशु अरु नारकी।
कीट अन्तः कनक देखा, सत्य तुम ही पारखी।।
भादव चतुर्दशी शुक्ल की, निर्वाण चम्पापुर लिया।
मोक्ष लक्ष्मी पाई प्रभु, जयकार इन्द्रों ने किया।।

ॐ ह्रीं श्री वासुपूज्यजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

विमलनाथ भगवान का अर्घ्य

('रोला' छंद)

विमलनाथ ने विमल आत्मा को है ध्याया।
राग-द्वेष मल नाश विमल पद को है पाया।।
मल विरहित शाश्वत निज पद को मैं भी पाऊँ।
इसी भावना से ही प्रभु मैं अर्घ्य चढ़ाऊँ।।

ॐ ह्रीं श्री विमलनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अनंतनाथ भगवान का अर्घ्य

('दोहा' छंद)

गुण अनंतमय आत्मा, सदा अनादि अनंत।
जो निज वैभव को लखे, बन जाए भगवंत।।
प्रभु सम ही निज आत्मा, जाना मैंने आज।
अनंतनाथ को पूजकर, पाऊँ निज पद राज।।

ॐ ह्रीं श्री अनंतनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

धर्मनाथ भगवान का अर्घ्य

('वीर' छंद)

धर्मनाथ प्रभु धर्म धुरंधर, धर्म धरा पर दिखलाया।
भवसागर से भवि जीवों को, तरना प्रभुवर सिखलाया।।
अर्घ्य चढ़ाकर, प्रभु पूजन कर, लौट न फिर भव में आऊँ।
वीतरागमय धर्म धारकर, धर्मनाथ सा बन जाऊँ।।

ॐ ह्रीं श्री धर्मनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शान्तिनाथ भगवान का अर्घ्य

('दोहा' छंद)

राग अरु विषय-कषाय से, रहता जगत अशान्त।
दोष अठारह से रहित, प्रभुवर रहो प्रशान्त।।
शांत छवि लख आपकी, मैंने पाई शांति।
शांतिनाथ निज में लखूँ, मिटे अनादि भ्रान्ति।।

ॐ ह्रीं श्री शांतिनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

कुंथुनाथ भगवान का अर्घ्य

('मानव' छंद)

जहाँ रागादि होते हैं, हिंसा भी वहाँ ही होती।
ज्ञायक स्वभाव निज माने, तो हिंसा कभी न होती।।
कुंथु आदि जीवों की, रक्षा करना बतलाया।
श्री कुंथुनाथ स्वामी ने, है करुणा भाव जगाया।।
हो यत्नाचार प्रवृत्ति, न दिल में किसी का दुखाऊँ।
मैं अर्घ्य समर्पित करके, अष्टम वसुधा को पाऊँ।।

ॐ ह्रीं श्री कुंथुनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अरनाथ भगवान का अर्घ्य

('वीर' छंद)

सहज-सरल-शुचि-शरणभूत, शिव-शंकर तो शुद्धातम है।
अजर-अमर अरु अशरीरी, अविनाशी निज परमातम है।।
नित्य निरंजन निर्मल निर्मम, निज आतम को मैं ध्याऊँ।
अरनाथ को अर्घ्य चढ़ाकर, पंचम गति को मैं पाऊँ।।

ॐ ह्रीं श्री अरनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मल्लिनाथ भगवान का अर्घ्य

('त्रोटक' छंद)

जग की क्षणभंगुर शोभा लख, प्रभु त्याग चले सारे जग को।
निज आतम ही रमणीय अहो, निज गुण-पर्यय में आप रहो।।
प्रभु मोह बली को जीत लिया, निज नाम सु सार्थक आप किया।
श्री मल्लिनाथ प्रभु को ध्याऊँ, यह अर्घ्य चढ़ा शिवपद पाऊँ।।

ॐ ह्रीं श्री मल्लिनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मुनिसुव्रतनाथ भगवान का अर्घ्य

('वीर' छंद)

सर्व परिग्रह त्याग मुनीश्वर, निज आतम को ग्रहण करते।
भय-लालच वश अरे अज्ञजन, हे प्रभु! तव पूजन करते।।
अचिन्त्य शक्ति का धारक आतम, अन्य परिग्रह से क्या काम।
सर्व प्रयोजन अरे सिद्ध हों, जब निज में पावे विश्राम।।
श्री मुनिसुव्रत ने 'सु' व्रत ले, मोक्षमार्ग में किया गमन।
अर्घ्य समर्पित कर चरणों में, सादर सविनय करूँ नमन।।

ॐ ह्रीं श्री मुनिसुव्रतनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

नमिनाथ भगवान का अर्घ्य

('वीर' छंद)

सूर्य कांति सम आभा जिनकी, चंद्रकांत सम शीतलता।
है वारिधि सम गुण अगाधता और मेरु सम कीर्ति लता।।
नमि जिन निज में नमकर मानो, निज में ही नमने कहते।
निज में रम कर अर्घ्य चढ़ा कर, भविजन शिवपथ पर चलते।।

ॐ ह्रीं श्री नमिनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

नेमिनाथ भगवान का अर्घ्य

('वीर' छंद)

1. मुक्तिरमा को चले ब्याहने, राजुल का है मोह तजा।
जड़ श्रृंगार सभी है त्यागा, रत्नत्रय से लिया सजा।।
गिरि गिरनार शिखर पर चढ़कर, निज अंतर में निरत हुए।
नेमिनाथ के श्रीचरणों में, हम सब सादर विनत हुए।।

ॐ ह्रीं श्री नेमिनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

('विजया/कव्वाली' छंद)

2. जिनने राजुल तजी, पर का राग तजा,
शिवादेवी के सुत, पर अजन्मे थे जो।
गिरनारी चढ़े, उतरे निज आत्म में,
राग किंचित् नहीं, प्यारे सबके थे वो।
शुक्ल आषाढ़ की थी वह शुभ सप्तमी,
जब मुक्ति का उनने वरण था किया।
तीनों लोकों में अद्भुत खुशी छा गई,
धन्य मुक्ति हुई पाकर नेमि पिया।।
है एकत्व ही सुन्दर त्रय लोक में,
पर से संबंध दुःखमय है दिखला दिया।

सच्चे सुख को चाहो तो निजातम भजो,
मेरे नेमि प्रभु ने यह बतला दिया।।

ॐ ह्रीं श्री नेमिनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

श्री पार्श्वनाथ भगवान को अर्घ्य

('सवैया' छंद)

अश्वसेन वामा के हैं राजदुलारे जो,
जगत के प्यारे, पर कोई नहीं साथ है।
नगर बनारस में जन्म लीना प्रभु आप,
बाल ब्रह्मचारी रहे नहीं गह्यो हाथ है।
शुक्ल पक्ष श्रावण का, सप्तमी है तिथि शुभ,
कूट स्वर्णभद्र तैं गह्यो मुक्ति हाथ है।
पर की न आस है, नहीं कोई दास है,
अनुपम रस भर्यो ऐसो पारसनाथ है।।

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

महावीर भगवान का अर्घ्य

('वीर' छंद)

1. मतिज्ञान से रहित हो सन्मति, शस्त्र रहित पर हो महावीर।
अगुरुलघु पर वर्धमान हो, निर्भय करते हो अतिवीर।।
वीर नाम है विरद आपका, त्रिशलानंदन कहलाते।
मुक्तिवधु के प्रियवर को लख, सुन-नर-मुनि नत हो जाते।।

ॐ ह्रीं श्री महावीरजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

('अवतार' छंद)

2. प्रभु दर्शन-ज्ञान-चरित्र, गुण एकत्र करूँ।
पर ज्ञेयों का तज साथ, बस निज में उतरूँ।।
इन्द्रादिक अपद स्वरूप, इनकी चाह गयी।
चैतन्य धातुमय गेह, की बस लगन लगी।।

ॐ ह्रीं श्री महावीरजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

('पद्धरि' छंद)

3. जय त्रिभुवनपति हो महावीर, वर्धमान, सन्मति, अतिवीर।
जय त्रिशलानंदन तुम ही वीर, तुमरे दर्शन से मिटे पीर।।
जय कुण्डलपुर में जन्म लेय, पावापुर तैं विधि क्षय करेय।
कार्तिक की थी अंधियारी रात, कर कर्म नष्ट प्रभु मोक्ष जात।।
प्रभु का शासन है वर्तमान, घोषित करता सब हैं महान।
पूजन करता हूँ प्रभो आज, मिल जाये मुझको मुक्ति राज।।

ॐ ह्रीं श्री महावीरजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

चौबीस तीर्थंकर को अर्घ्य

('अवतार' छंद)

1. मैं भूल स्वयं निज रूप, भव-भव दुख पाया।
हूँ स्वयं सिद्ध सुख भूप, प्रभु ने समझाया।।
ऋषभादि वीर जिनेश, चौबिस प्रभु ध्याऊँ।
मैं करूँ कर्म अवसान, अष्टम भू पाऊँ।।

ॐ ह्रीं श्री वृषभादिवीरान्तेभ्योऽनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

('मानव' छंद)

2. चैतन्य स्वपद के सन्मुख, इन्द्रादिक पद न चाहूँ।
अन अर्घ्य सुपद मिल जाये, बस निज में ही रम जाऊँ।।
चौबीस परिग्रह त्यागूँ, पदवी अनर्घ्य मैं पाऊँ।
चौबीस तीर्थंकर ध्याऊँ, तब निर् आकुल सुख पाऊँ।।

ॐ ह्रीं श्री वृषभादिमहावीरान्तेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि. स्वाहा।

श्री सिद्ध भगवंतों के लिए अर्घ्य

('वीर' छंद)

क्षायिक दर्शन-ज्ञान-अगुरुलघु, सूक्ष्मत्व अरु अव्याबाध।
समकित-वीरज अवगाहन से, और रही न कोई साध।।
प्रकट अष्ट गुण हुए प्रभु को, यह कहना है बस व्यवहार।
गुण अनंतमय प्रभु शोभते, जहाँ न कोई है उपचार।।

अनंत गुणमयी निजानुभूति, अनंत काल तक भोगेंगे।
बनें प्रभु के हम अनुगामी, अब क्यों भव में रोयेंगे।।
कर सिद्धत्व साध्य ही अपना, सिद्धों को सादर ध्याऊँ।
गुण अनंतमय अर्घ्य समर्पित, लौट न फिर भव में आऊँ।।

ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि.स्वाहा।

श्री सीमंधर भगवान का अर्घ्य

('वीर' छंद)

1. निज सीमा को धारण करते, सीमंधर कहलाते हैं।
निज सीमा को कोई न छोड़े, सबको यह समझाते हैं।।
द्रव्य-क्षेत्र अरु कालभावमय, निज सीमा है बतलाई।
निज सीमा को जो स्वीकारे, उसकी ही महिमा भाई।।

ॐ ह्रीं श्री सीमंधरजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

('दोहा' छंद)

2. निज सीमा को न तजें, सीमंधर भगवान।
विदेह क्षेत्र में राजते, हो अनंत गुणवान।।
कुन्दकुन्द मुनिराज ने, पाया तुमसे ज्ञान।
भरतक्षेत्र को मिल गया, मनवांछित वरदान।।

ॐ ह्रीं श्री सीमंधरजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

रत्नत्रय का अर्घ्य

('वीर' छंद)

सम्यग्दर्शन ज्ञान चरण ही, रत्नत्रय कहलाते हैं।
रत्नत्रय की आराधन से, निजानंद को पाते हैं।।
निज आतम के अवलंबन से, रत्नत्रय को प्रकटाऊँ।
जन्म जरा मृत को क्षय करके, लौट न फिर भव में आऊँ।।

ॐ ह्रीं श्री सम्यक्रत्नत्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

1. मानस्तंभ में विराजमान जिनबिम्बों के लिए अर्घ्य

(तिहारे ध्यान की मूरत...)

महा मनहारी मानस्तंभ, हमारे मान को खोता।
लखे इक बार निज वैभव, उसे सम्यक्त्व है होता।।
जो परद्रव्यों में है अटका, चतुर्गति में वही भटका।
न जाने आत्मवैभव को, वही रोता हुआ फिरता।।
ये मानस्तंभ महिमामय, प्रभु की शक्ति दिखलाता।
प्रभु सम ही है मम वैभव, अपरिमित शक्ति बतलाता।।

ॐ ह्रीं श्री मानस्तंभस्थित वीतरागजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

2. मानस्तंभ का अर्घ्य

श्री सीमंधर नाथ का, मानस्तंभ महान।
अंतर बाह्य सु लक्ष्मी से, अनुपम महिमावान।।
गुण-पर्यय अरु द्रव्य से, मैं अरहन्त समान।
सभी जीव हैं सिद्ध सम, अरु त्रिकाल निरमान।।

ॐ ह्रीं श्री मानस्तंभस्थित श्री सीमंधरनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

1. समवसरण का अर्घ्य

('वीर' छंद)

परम शान्त मुद्रा मय जिनवर, समवसरण में शोभित हैं।
वीतरागसुखमय प्रभु को लख, सुर नर पशु सब मोहित हैं।।
अनंत चतुष्टय धारक प्रभुवर, गुण अनंतमय वस्तु कहें।
समवसरण अरु जिनवर को लख, मोह शत्रु का नाश करें।।

ॐ ह्रीं श्री समवसरणस्थित वीतरागजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

2. समवसरण का अर्घ्य

('वीर' छंद)

परमौदारिक दिव्य देह में, तीर्थंकर प्रभु रहे विराज।
समवसरण में स्वर्ण कमल पर, शोभित होते हैं जिनराज।।
हैं अलिप्त निरपेक्ष निरामय, ज्ञाता दृष्टा श्री भगवान।
दिव्यध्वनि में ध्वनित हो रहा, सभी जीव हैं सिद्ध समान।।
सुर नर तिर्यक् जीव जहाँ पर, अद्‌भुत शान्ति हैं पाते।
अर्घ्य चढ़ा कर शिव पद पाऊँ, यही भावना हम भाते।।

ॐ ह्रीं श्री समवसरणस्थित वीतरागजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि. स्वाहा।

पंचमेरु-नंदीश्वर द्वीप-गजदंत स्थित जिनालय-जिनबिम्बों के लिए अर्घ्य

('वीर' छंद)

शाश्वत पंचमेरु हैं जग में, शाश्वत है नंदीश्वर द्वीप।
शाश्वत है गजदंत जिनालय, शाश्वत शिवमग करें प्रदीप।।
शाश्वत मैं निज आतम जानूँ, शाश्वत शिवसुख को पाऊँ।
पद अनर्घ्य को प्राप्त करूँ मैं, लौट न फिर भव में आऊँ।।

ॐ ह्रीं श्री पंचमेरु-नंदीश्वरद्वीप-गजदंत स्थित जिनालय-जिनबिम्बेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

निर्वाण/सिद्ध क्षेत्रों के लिए अर्घ्य

('रेखता/दोधक' छंद)

सिद्ध पद पाया जहँ मुनिराज, वही तीरथ कहलाते हैं।
भविकजन आकर इस भूपर, भवोदधि से तिर जाते हैं।।
तीर्थ निर्वाण सिद्ध पावन, महामंगल के दाता हैं।
हैं अतिशय क्षेत्र सुखद भाई, निजातम शांति प्रदाता हैं।।

ॐ ह्रीं श्री समस्तनिर्वाण-सिद्ध-अतिशयक्षेत्रेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अकृत्रिम/कृत्रिम जिनालय जिनबिम्बों के लिए अर्घ्य

('वीर' छंद)

है षट्द्रव्यमयी जग अनुपम, कोई न इसका निर्माता।
शाश्वत जग में शाश्वत मंदिर, शाश्वत प्रतिमा सुख दाता।।
ढाई द्वीप में भव्यजीव भी, जिनमंदिर बनवाते हैं।
भक्तिभाव से करें प्रतिष्ठा, जिन प्रतिमा पधराते हैं।।
बिम्ब अकृत्रिम कृत्रिम देखो, निज स्वरूप हैं दरशाते।
परम शान्त निर्दोष रूप लख, भव्य निजातम को पाते।।

ॐ ह्रीं श्री त्रिलोकसंबंधि-कृत्रिमाकृत्रिम चैत्यचैत्यालयेभ्योऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

महार्घ्य

('वीर' छंद)

पंच परम पद पूज रहा हूँ, अरु पूजूँ जिनवाणी को।
जिनमंदिर, जिनबिंब जजूँ मैं, सुख शान्ति के पाने को।।
वीतरागमय धर्म को पूजूँ, वीतराग बन जाने को।
तीर्थक्षेत्र सभी मैं वन्दूँ, भवसागर तर जाने को।।
पंचमेरु नंदीश्वर वंदूँ, वंदूँ मैं रत्नत्रय धर्म।
दशलक्षण मैं सादर वन्दूँ, जिनसे कटते सारे कर्म।।
तीन लोक के पूज्य पदों को, सादर वन्दन करता हूँ।
पद अनर्घ्य मिल जाये स्वामी, अर्घ्य समर्पित करता हूँ।।

ॐ ह्रीं श्री अरहन्तसिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुभ्यो, द्वादशांगजिनवाणीभ्यो उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय, दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणेभ्यो, सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रेभ्यः त्रिलोकसम्बन्धीकृत्रिमाकृत्रिमजिनचैत्यालयेभ्यो, पंचमेरौ अशीतिचैत्यालयेभ्यो, नन्दीश्वरद्वीपस्थद्विपंचाशज्जिनालयेभ्यो, श्री सम्मेदशिखर, गिरनारगिरि, कैलाशगिरि, चम्पापुर, पावापुर-आदिसिद्ध-

क्षेत्रेभ्यो, अतिशयक्षेत्रेभ्यो, विदेहक्षेत्रस्थितसीमंधरादिविद्यमानविंशति-तीर्थंकरेभ्यो, ऋषभादिचतुर्विंशति-तीर्थंकरेभ्यो, भगवज्जिनसहस्राष्ट-नामभ्यश्च अनर्घ्यपदप्राप्तये महाऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शांतिपाठ

('हरिगीतिका' छंद)

तुम शान्ति सागर हो प्रभु, मैं शान्ति पाना चाहता।
हों जीव सारे शान्तिमय ही, और कुछ न चाहता।।
तव दर्श-पूजन से प्रभो, मुझको समझ यह आ गया।
मैं स्वयं सुखरूप हूँ, मम रूप मुझको भा गया।।
अब मोहतम का नाश होवे, ज्ञान का सुप्रभात हो।
सब ईति-भीति नष्ट होकर, धर्म का ही प्रसार हो।।
जबतक न तुम सम मम दशा हो, तव शरण मुझको मिले।
सज्जनों का साथ हो अरु, जिनवचन से उर खिले।।

पुष्पांजलिं क्षिपामि

क्षमापना

('दोहा' छंद)

गुण अनंतमय आप हैं, मैं हूँ अति अल्पज्ञ।
तव गुण कथन न कर सकें, सुर-नर-मुनि बहु विज्ञ।।
पूजन-अर्चन कथन में, द्रव्य-भाव त्रुटि होय।
क्षमायाचना मैं करूँ, मानादिक को खोय।।
मंगलमय हैं वीर प्रभु, गौतम अरु कुन्दकुन्द।
मंगल जिनशासन अहो, मंगल हैं मुनिवृन्द।।

पुष्पांजलिं क्षिपामि

देव-भक्ति

जिनवर भक्ति...

श्री जिनवर का रूप है मनहर, निज वैभव दर्शाता।
जो जिनवर का रूप निहारे, वह निज दर्शन पाता।। टेक।।

पद्मासन थिर मुद्रा कहती, निज में ही जम जाओ।
नाशा दृष्टि प्रभु की लखकर, दृष्टि निज पर लाओ।।
जिन को लख जो निज को ध्याता, वह निज वैभव पाता।। 1।।

काम-क्रोध-मद-लोभ-मोह से, विरहित रूप तुम्हारा।
पर निरपेक्ष वृत्ति को लखकर, कर्म शत्रु भी हारा।।
जन्म-मरण से रहित प्रभु तुम, भक्त अमर हो जाता।। 2।।

स्याद्वादमय प्रभु की वाणी, वस्तु स्वरूप बताती।
सप्त तत्त्व, षट् द्रव्य बताकर, निज महिमा दर्शाती।।
जिनवर सम निज वैभव लखकर, भेदज्ञान हो जाता।। 3।।

मात-पिता के निकट में आकर, ज्यों शिशु प्रमुदित होता।
त्यों प्रभुवर के आ समीप में, भक्त रोमांचित होता।।
चरणांबुज स्पर्श करे तो, मोह तिमिर भग जाता।। 4।।

अंतर्मुख मुद्रा लख प्रभु की, जो अंतर्मुख होता।
झलकें ज्ञेय विविध रूपों में, पर ना प्रभावित होता।।
जिनवर का अनुकरण करे जो, वह जिनवर बन जाता।। 5।।

वृक्ष सभी को फल देते हैं, नदियाँ सबको देतीं जल।
सूर्य तुरत ही तम हर लेता, कभी नहीं वह कहता कल।।
पुण्योदय से प्राप्त संपदा, जो परहित व्यय करते हैं।
धन पाना उनका ही सार्थक, उनका जीवन होय सफल।।

शास्त्र-भक्ति

जिनवाणी स्तुति

शुभ्र ज्योत्सनावत् जिनवाणी, शीतल शान्ति प्रदाता है।
भविजन को शिशु सम कर पोषित, कहलाती जगमाता है।।

अनेकान्तमय वस्तु प्रकाशक, मोहतिमिर की नाशक है।
सप्त तत्त्व, षट् द्रव्य बताकर, दर्शाती निज ज्ञायक है।।

स्याद्वाद मय जिनवचनों से, मिटता भव का क्रन्दन है।
स्व-पर प्रकाशक जिनवाणी को, सादर मेरा वन्दन है।।

दुर्निवार दुर्नय की नाशक, विसंवाद विध्वंसक है।
नय-प्रमाण-निक्षेपों द्वारा, मुक्ति मार्ग प्रकाशक है।।

सिद्ध समान आत्म दर्शाती, निज वैभव को प्रकट करे।
जिन वचनों का वाच्य समझकर, भविजन पाते मुक्ति अरे।।

गुरु-भक्ति

वंदन नगन निरम्बर गुरु को....

वंदन नगन निरम्बर गुरु को।
परिग्रह रहित दिगम्बर गुरु को।।

क्षण-क्षण मांहिं लखें, निज आतम, दें उपदेश लखों शुद्धातम।
भूपर विचरें सिद्धों सम जो, ऐसे नगन निरम्बर गुरु को।। 1।।

अन्तर में चैतन्यरूप हैं, अठविंशति गुण बाह्य रूप हैं।
पूर्ण अहिंसक जिनका जीवन, ऐसे नगन निरम्बर गुरु को।। 2।।

यश-अपयश अरु लाभ हानि में, राजा रंक अरु महल मशान में।
समता रस का पान करें जो, ऐसे नगन निरम्बर गुरु को।। 3।।

स्वात्मालोचन

('हरिगीतिका' छन्द)

गतराग अरु सर्वज्ञ हैं, घनघाति कर्म विमुक्त हैं।
सर्वोदयी संदेश 'जिन' का, चरण में हम विनत हैं।।
वसु कर्म नष्ट हुए हैं जिनके, हुआ सुक्ख अपार है।
उन ध्रुव-अचल श्री सिद्ध-प्रभु को, वंदना शतबार है।।1।।

विषय-आशा-रहित हैं, निज-आत्म में जो निरत हैं।
वे सूरि-पाठक-साधु सब, आरंभ-परिग्रह-रहित हैं।।
ऋषभादि 'तीर्थंकर' प्रभु को, भाव से वंदन करूँ।
निर्दोष होने अति-विनय से, दोष मैं निज उच्चरूँ।।2।।

'अज्ञता' मेरी प्रभो! मैं क्या कहूँ? कैसे कहूँ?
कर्तृत्व और ममत्व के वश, घोर दुख क्यों ना सहूँ?
न्याय-नीति-जिन वचन की, बात मैं मुख से करूँ।
पर मैं स्वयं सन्मार्ग पर, चलता नहीं कैसे कहूँ?।।3।।

परवस्तु को 'निज-वस्तु' कहकर, सदा अतिक्रम ही किया।
अन्य से भरपूर लेकर, कण नहीं पर को दिया।।
निर्माल्य-भक्षण मैं किया प्रभु, जो महा-अघरूप है।
नर-नारि-तन पर हुआ मोहित, जो महा दुखकूप है।।4।।

स्वाद-लोलुप हो प्रभो! मैं, भक्ष्याभक्ष्य सभी चखा।
विषय-लोभी ही रहा मैं, नहीं संयम धर सका।।
मैं पिता होकर प्रभो, ना तनय संस्कारित किये।
पुत्र होकर जन्म-दाता, को न सेवा-फल दिये।।5।।

'धर्म पत्नी' बन प्रभो, मैं धर्म से ही च्युत किया।
मैं दुराचारी रहा, अर्धांगिनी चाही सिया।।

परिजनों के मध्य रहकर, न किया सत्कर्म को।
अधिकार ही चाहा सदा, समझा नहीं कर्त्तव्य को।।6।।

जग में बड़प्पन को दिखाने, दान मैं देता रहा।
पद-प्रतिष्ठा-यश मिले, दिन रात चिंतन में रहा।।
इसके लिए निर्लज्ज हो, गुणगान सबके ही किये।
लोभ में बनकर 'सरल', कटु वचन भी सबके सहे।।7।।

अपशब्द कहकर मैं सभी को, कष्ट ही देता रहा।
क्रोध-मद में अंध हो, अपमान ही करता रहा।।
'कर्त्ता नहीं, सब जीव ज्ञाता', सबको समझाता फिरूँ।
वर्क्तृत्व के कर्त्तृत्व में, उन्नत वदन जग में रहूँ।।8।।

गुरु-नाम का 'अपलाप' कर, निज-नाम को ऊँचा किया।
कर्तृत्व था जो अन्य का, उसको कहा 'मैंने किया'।।
मैं पाप करता रात-दिन पर, पुण्य फल चाहूँ सदा।
समता-समर्पण-समन्वय के, भाव न होते कदा।।9।।

विषय-भोगों की कथा ही, मैं सदा सुनता रहा।
निज आत्मा की वार्त्ता को, मैंने नहीं सुनना चहा।।
जो दोष अष्टादश-सहित अरु, रूप विविध धरे अरे!
मोहित-मती मेरी रही, जो पूज्य पद उनको कहे।।10।।

जिनदेव अरु जिनधर्म पाकर, आत्मा जाना नहीं।
'मैं स्वयं हूँ सिद्ध-सम', यह कभी माना नहीं।।
स्व-पर-हितकर जिन-वचन का, नहीं सेवन मैं किया।
मोह-नाशक जिन-वचन पा, मोह संवर्धन किया।।11।।

नियत अरु व्यवहार-नय में, एकांत का ही पक्ष ले।
एक को करके ग्रहण, मैं तजा दूजा दोष दे।।

द्विविध वस्तु है नहीं, बस कथन द्विविध प्रकार है।
जिनवच-रहस समझा नहीं, नरदेह की यह हार है।।12।।

व्यवहार-नय के कथन से, कर्त्तृत्व का पोषण किया।
स्वच्छंद होकर स्वमति से, परमार्थ को दूषित किया।।
तन में सदा एकत्व कर, पर में किया ममकार है।
निज-विभव भूला हे प्रभो! मैं सहा दुक्ख अपार है।।13।।

मैं शुभाशुभ-भावमय, माना यही मदमस्त हो।
सत्यपथ कैसे दिखे? जब ज्ञान-रवि ही अस्त हो।।
देव-गुरु-गुणगान कर, कहते सदा 'शुद्धात्मा'।
जिनवचन सुन, अनसुना कीना, रहा मैं बहिरात्मा।।14।।

सद्भाग्य जागा आज मेरा, देव! जिन दर्शन किये।
कर्ण मेरे हुए पावन, जिन-वचन अमृत पिये।।
जिनदेव कहते दिव्यध्वनि में, तुम शुभाशुभ-मुक्त हो।
रागी नहीं द्वेषी नहीं, न प्रमत्त अरु अप्रमत्त हो।।15।।

परमार्थ से तुम शुद्ध हो, अरु एक-दर्शन ज्ञानमय।
निज-आत्मा को जान-मानो, रमो निज में हो अभय।।
रस-रूप-गंध-रहित सदा, पर्याय से भी पार हो।
तुम हो अनूपम विश्व में, तुम मुक्तिश्री हिय हार हो।।16।।

हम हैं सभी शुद्धात्मा, कोई नहीं छोटा-बड़ा।
जो सिद्ध-सम निज को न देखे, वह भवोदधि में पड़ा।।
मैं सदा ज्ञायक-स्वभावी, अरु अनादि-अनंत हूँ।
मैं दीन-हीन नहीं प्रभो! मैं मुक्तिलक्ष्मी कंत हूँ।।17।।

वर्णादि से विरहित सदा, मेरा अहो चिद्रूप है।
निष्कर्म-निर्मम और निर्मल, ही सदा मम रूप है।।

निज-चतुष्टय न तजूँ, परसंग मैं करता नहीं।
अस्तित्व गुण के कारणे, मैं तो कभी मरता नहीं।।18।।

पर्याय-दृष्टि अब तजूँ, मैं लखूँ शुद्ध-स्वभाव को।
निज आत्मा में 'अहं' करके, छोड़ दूँ परभाव को।।
पर्याय में एकत्व ही, सबसे बड़ा मम दोष है।
शुद्धनय से सदा देखूँ, आत्मा निर्दोष है।।19।।

अब चलूँ मैं वीर-पथ पर, वीर बनने के लिए।
छोड़ दूँ दुष्कर्म सारे, अज्ञता में जो किये।।
निज-आत्मा को जानकर, निज में रमूँगा मैं प्रभो!
अज्ञता तज, विज्ञ हो, सर्वज्ञ पद पाऊँ विभो।।20।।

वीर प्रभु को है वंदन

सिद्धारथ गृह त्रिशला के उर, वर्द्धमान अवतरण हुआ।
चैत्र शुक्ल तेरस के शुभ दिन, तीन लोक आनंद हुआ।।
मन इन्द्रिय को जीत जितेन्द्रिय, हे जिनवर! कहलाते हो।
हाथ नहीं है अस्त्र-शस्त्र पर, कर्मारि कहलाते हो।।
वीतराग-सर्वज्ञ जिनेश्वर, वस्तु रूप स्वाधीन कहो।
रति नहीं करते परज्ञेयों में, निजानंद में लीन रहो।।
सब जीवों का जन्म-मरण अरु, लाभ-हानि सब निश्चित है।
कब सिद्धत्व प्रकट होगा यह, भी अनादि से निश्चित है।।
वस्तुस्वरूप बताया प्रभुवर, है उपकार अनंत प्रभो।
तव पथ पर चलकर के स्वामी, 'सुखायतन' में आऊँ विभो।।
जन्मकल्याणक वीर प्रभु का, सादर उनको वंदन है।
सन्मति सम मम मति हो, जो शीतल सुरभित चंदन है।।
जब तक राग रहे मम हिय में, तव गुण निधि का चिंतन हो।
सत्संगति स्वाध्याय सदा हो, निज हित हेतु 'समर्पण' हो।।

निज-दोष-दर्शन

('दोहा' छन्द)

जिनवर-जिनवच-जिनगुरु, अरु तीर्थंकर-नाम।
भक्ति-भाव उर-धारकर, सादर करूँ प्रणाम।।1।।
हे प्रभु ! तुम निर्दोष हो, ज्ञान-दर्श-सुख पूर्ण।
तव पथ पर मैं भी चलूँ, करूँ दोष को चूर्ण।।2।।

('वीर' छन्द)

अनादिकाल से चतुर्गति में, मोह-राग-वश भ्रमण किये।
एकेंद्रिय से पंचेन्द्रिय-तन, धरकर विध-विध कष्ट सहे।।
जिन-वच में ही शंका धरकर, व्यर्थ विकल्प किए नाना।
हो स्वच्छंद पापों में रत हो, नरक-निगोद पड़ा जाना।।
जीवन-मरण, लाभ अरु हानि, हो जिस विधि प्रभु ने जाना।
पर-परिवर्तन करना चाहा, 'क्रमबद्ध' को ना माना।।
नरतन धरकर अज्ञदशा में, मैंने बहु-अपराध किये।
बचपन बीता खेलकूद में, नहीं ज्ञान-संस्कार लिये।।
यौवन पाकर हो मतवाला, विषयों में ही मस्त रहा।
धन-पद-यश पाने को उद्यत, आतम-हित में सुस्त रहा।।
वीतराग को नमस्कार कर, राग-सहित पूजे मैंने।
जैनाचार को दे तिलांजलि, भ्रष्टाचार किया मैंने।।
चल-चित्रों के विकट-जाल, अरु धारावाहिक में उलझा।
नायक-खलनायक सब नाटक, सत्य-स्वरूप नहीं समझा।।
उनको निज-आदर्श बनाकर, राग-द्वेष किए मैंने।
नाच-गान अरु फैशन में फँस, जीवन व्यर्थ किया मैंने।।
सर्च किया 'गूगल' पर 'सब कुछ', जिनवाणी को ना देखा।
मोबाइल से करी मित्रता, किया न भावों का लेखा।।
बाजारों के भावों में फँस, निज-स्वभाव को ना जाना।
लोभ के वश हो योग्यायोग्य-वणिज कीना है मनमाना।।

तत्त्वज्ञान के ही अभाव में, मंत्र-तंत्र में उलझ गया।
सुख-दुःख मिलता निज-कर्मों से, जिन-वच को मैं भूल गया।।
राष्ट्र-समाज-अहित करके भी, निज-हित ही साधा मैंने।
ध्वनि-जल-वायु प्रदूषित करके, जीवों को मारा मैंने।।

नल के जल को छाना मैंने, रोगाणु से बचने को।
'जीवाणी' ना विधि से कीनी, मरें जीव तो मरने दो।।
व्यर्थ चलाकर पंखा-कूलर, जीवों का बहुघात किया।
ए.सी.-फ्रिज अरु हीटर-गीजर, चला-चला कर पाप लिया।।

गैस-जलाकर, बातों में लग, व्यर्थ ही आग जलाई है।
मानों निज-हाथों से मैंने, सुख में आग लगाई है।।
जमीकंद अरु मद्य-मधु का, भी सेवन मैंने कीना।
पंच-इंद्रिय के सुख पाने को, जीवन 'त्रस' का भी छीना।।

बिन छाने जल से मशीन में, मैंने कपड़े धोये हैं।
होटल में भोजन कर-करके, बीज पाप के बोये हैं।।
द्विदल-सेवन, उपवन-भोजन, करके 'त्रस' का घात किया।
चर्म, सिल्क अरु चर्बी-निर्मित, वस्तु का उपभोग किया।।

निशि में भोजन-पूजन-फेरे, किये कराये हैं मैंने।
आतिशबाजी अरु डी.जे. से, सुख से नहीं दिया जीने।।
बहु प्रकार से हे प्रभु! मैंने, अगणित कीने हैं अपराध।
हों अपराध क्षमा सब मेरे, सादर झुका रहा हूँ माथ।।

हे प्रभु ! अब मैं कुछ ना चाहूँ, देव-शास्त्र-गुरु-शरण मिले।
जिन-दर्शन से निज-दर्शन हो, उर में समकित-सुमन खिले।।
आप ही हो आदर्श हमारे, तव पथ पर चलना चाहूँ।
दोषों का प्रक्षालन करके, तुम-सम ही बनना चाहूँ।।

संत स्वभाव निराला

नाना वस्त्राभूषण धरकर, भी हमने दुःख पाये हैं।
नग्न दिगम्बर संत हमारे, देखो सुख में नहाये हैं।।
बार-बार हम भोजन करते, तो भी तृप्त नहीं होते।
नीरस-सरस, मिले न मिले, मुनिवर व्यग्र नहीं होते।।
हम रहते हैं ए.सी. में पर, विषय-कषायों से हैं तप्त।
मुनिवर रहते वन-जंगल में, निजानंद में रहते मस्त।।
मान-प्रतिष्ठा अरु धन-पद के पीछे हैं हम भाग रहे।
मुनिवर तो इन सबको तजकर, बस निज में ही जाग रहे।।
निज वैभव को भूल स्वयं हम, जड़ वैभव पाना चाहें।
धन्य-धन्य गुरुराज हमारे, जड़ तज चिद् वैभव पायें।।
मात-पिता अरु भाई बन्धु, पत्नी पुत्र लगे परिवार।
गुरुवर उनसे मोह तजा है, गुण अनंत जिनका परिवार।।
हम कहते सर्दी-गर्मी में, क्या करते मुनि बेचारे?
मुनिवर तो निज वैभव भोगें, भोगी लगते बेचारे।।
बाहर का है माल खजाना, भीतर से हैं हम कंगाल।
यतिवर के है पास न तिल तुष, फिर भी वे हैं मालामाल।।
जड़ दृष्टि को छोड़ो भाई, चेतन से नाता जोड़ो।
विषय-कषायों में न सुख है, इनसे अब मुँह को मोड़ो।।
है स्वाधीन सहज अरु सुखमय, मुनिराजों का ही जीवन।
उनको निज आदर्श बनाओ, विषयों में फिर लगे न मन।।
देते हैं संदेश मौन रह, हो जाओ भव्यो! स्वाधीन।
सुख-शांति वे कभी न पाते, जो रहते पर के आधीन।।
किया 'समर्पण' दर्श-ज्ञान का, जैसे निज में मुनिवर ने।
वंदना करके उन मुनिवर को, मैं भी रम जाऊँ निज में।।

ज्ञान स्वभाव निराला

दर्पण में दर्पण दिखता है, नहीं होता वह बिम्बाकार।
नाना रूप दिखें दर्पण में, वे सब दर्पण के आकार।।

त्यों ज्ञायक में प्रतिबिम्बित होते, पर रहता वह ज्ञानाकार।
ज्ञेयाकार उन्हीं को कहना, यह कहलाता है व्यवहार।।

दर्पण में दर्पण ही देखे, नहीं देखता जो प्रतिबिम्ब।
प्रतिबिम्बों में दर्पण ही है, बाहर ही रहता है बिम्ब।।

ज्ञान-ज्ञेय को भिन्न मानकर, सुखी रहें वे ज्ञानी हैं।
ज्ञेयाश्रित जो निज को माने, वे मानी अज्ञानी हैं।।

ज्ञान न ज्ञेयों में जाता है, ज्ञेय स्वयं में नहीं आते।
ज्ञान की निर्मलता है ऐसी, ज्यों के त्यों वे झलकाते।।

ज्ञायक को ही ज्ञेय बनाओ, और बनाओ तुम श्रद्धेय।
ज्ञेयों की चिन्ता से बस हो, ज्ञायक ही है मेरा ध्येय।।

करो 'समर्पण' निज का निज में, नहीं रहोगे तुम अल्पज्ञ।
ज्ञेयों पर से दृष्टि हटाकर, आत्मज्ञ होते सर्वज्ञ।।

जिनवर भक्ति ('दोहा' छन्द)

वीतराग मुद्रा प्रभो! मम मन मोहे नाथ।
तव दर्शन से हे प्रभो, मैं भी हुआ सनाथ।।1।।
नाशादृष्टि सीख दे, लखो न पर की ओर।
निज आतम के दर्श से, होवे सम्यक् भोर।।2।।
पद्मासन मुद्रा कहे, बाहर कहीं न जाओ।
आना-जाना छोड़ कर, निज में ही रम जाओ।।3।।
पर कर्तृत्व सदा तजो, हस्त युगल की सीख ।
निजानंद रस पान कर, सुख की माँग न भीख।।4।।
अन्तर्मुख मुद्रा कहे, पर से दृष्टि हटाव।
तन-मन-धन का लक्ष्य तज, निज में ही रम जाव।।5।।

समर्पण द्वारा प्रकाशित अन्य साहित्य

समर्पण का मासिक प्रकाशन संस्कार सुधा

तीर्थधाम सिद्धायतन
द्रोणगिर

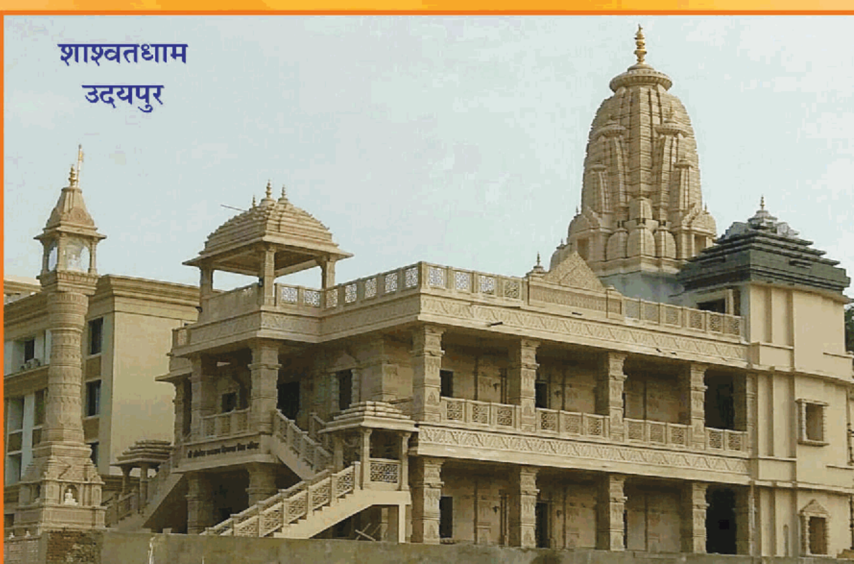

शाश्वतधाम
उदयपुर